ॐ

बिजनौरमंडलआर्यसमाज

का

इतिहास

(सचित्र)

लेखक—

बिजनौर-ज़िलान्तर्गत हल्दौर-ग्राम-निवासी

पं० भवानीप्रसाद जी

प्रणेता—आर्यपर्वपद्धति, आर्यपर्वावलि, संस्कृत-चारुचरितावलि, काँगड़ी-गुरुकुलीय आर्यभाषा-पाठावलि।

संग्रहीता—काँगड़ी-गुरुकुल-विश्वविद्यालयान्तर्गत-महाविद्यालयपाठ्य विन्दुचतुष्टयात्मक साहित्यसुधा-संग्रह।

प्रकाशक—

बिजनौर-मण्डल-आर्यसम्मेलन-प्रबन्धकारिणी सभा

प्रथम संस्करण १००० प्रति	श्रीमद्दयानन्दाब्द १०५ कार्तिक संवत् १९८६ वि०	मूल्य १॥) प्रति

प्रकाशक—
बिजनौर-मंडल-आर्य-सम्मेलन
प्रबन्धकारिणी सभा

मुद्रक—
शान्तिचन्द्र जैन,
"चैतन्य" प्रिन्टिङ्ग प्रेस,
बिजनौर

गुरुवर महर्षि श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती
इस चित्रका फोटो महाराजा शाहपुरा से प्राप्त

प्रबन्ध-प्रवेश ।

इतिहासपुराणं पञ्चमं वेदानां वेदम् ।

छान्दोग्योपनिषत्सप्तमप्रपाठक

इतिहासपुराणाभ्यां वेदार्थमुपबृंहयेत् ॥

अन्धकार है वहाँ, जहाँ रविवास नहीं है ।

है मुर्दा वह देश, जहाँ इतिहास नहीं है ॥

इतिहास की महिमा का प्रमाण इससे बढ़कर क्या होसकता है कि ऊपरशीर्षक में दिये हुए छान्दोग्यउपनिषत् के वचन में उसको प्रशंसारूप से पाँचवां वेद बतलाया गया है तथा ऊपर के दूसरे प्रमाण में इतिहास और पुराण के द्वारा वेदार्थ की वृद्धि का विधान है । इतिहास से जिज्ञासातृप्ति, नीतिशिक्षा, मन की उन्नति और प्रसन्नता, राजनैतिक ज्ञान और मनःपुष्टि आदि जो विविध लाभ प्राप्त होते हैं, उनकी व्याख्या का यहाँ अवकाश नहीं है ।

वस्तुतः जिस राष्ट्र का इतिहास नहीं है, वह समुन्नति के सोपान पर नहीं चढ़ सकता । जिसको अपने पूर्व-पुरुषों का कोई गौरव नहीं है तथा जिसके सामने कोई आदर्श नहीं है,

वह उन्नति के पथ पर कैसे अग्रेसर हो सकता है ? यही कारण है कि जीवित जातियाँ प्राणपण से अपने इतिहास की संरक्षा में तत्पर रहती हैं। प्राचीनकाल में भारतीय जन भी भारतीय इतिहास की रक्षा में किसी से पश्चात्पद न थे। इतिहास को वे जो महत्व देते थे, वह ऊपर के प्रमाणों और धार्मिक कृत्यों तक में वेद के साथ-साथ इतिहासपुराण श्रवण के विधान से भले प्रकार विदित होता है। इतिहास की रक्षा के लिए उनके यहाँ पौराणिक पुरुषों की एक श्रेणी ही नियत थी और पाणिनीय व्याकरणानुसार 'पौराणिक' का अर्थ ही, पुराणपाठक वा पुराणवाचक होता है। प्राचीन काल में पुराण और इतिहास पर्यायवाची शब्द थे। संस्कृत का इतिहास शब्द "इति + ह + आस" इन तीन शब्दों से मिलकर बनता है, जिसका शाब्दिक अर्थ "इति" (ऐसा) + "ह" (निश्चय से) + "आस" (था) है, इस प्रकार इतिहास का शाब्दिक अर्थ हुआ जो घटना निश्चयरूप से घटी थी। वास्तविक वा संघटित घटना के अर्थ को प्रकाशित करने वाली विद्या के लिए संस्कृत "इतिहास" शब्द से बढ़कर और उत्तम शब्द संसार की किसी भाषा में नहीं मिलता है, किन्तु करालकाल की कुटिल गति से इतिहास का पर्यायवाचक 'पुराण' शब्द गपोड़ों से भरे हुए ग्रन्थों के रूप में परिवर्तित होगया है। प्राचीन पौराणिकों के अपने पद से परिभ्रष्ट पतन युग के वंशधरों ने अपने श्रोताओं की अद्भुत रस की तृप्ति के लिए अनेक कपोलकल्पित ग्रन्थ रचकर सुनाने आरम्भ कर दिए और उनका प्रणेतृत्व सत्यवती-सुत कृष्णद्वैपायन श्री व्यासजी के प्रति प्रसिद्ध करने लगे। तभी से "अष्टादशपुराणानां कर्त्तासत्यवतीसुतः" यह आभाणक लोक में चल पड़ा है। सम्प्रति

सम्प्राप्त पुराणों में, जिनको वस्तुतः पुराण न कहकर नवीन ग्रन्थ कहना चाहिये, वास्तविक इतिहास का अंश नगण्य पाकर विदेशीय ऐतिहासिकों ने जो यह कल्पना करली है कि प्राचीन भारतीय इतिहास विद्या से अनविज्ञ थे, वह निराधार नहीं है। वर्तमान पुराणों का स्वरूप और सत्य इतिहास पुस्तकों की अविद्यमानता प्रत्येक तत्वान्वेषक पुरुष को इसी परिणाम पर पहुंचाएगी। आगे चलकर राजपूत काल में इन पौराणिक भट्टों का भाट के रूप में और भी बिगाड़ होगया और उन्होंने अपने आश्रयदाता राजा महाराजों की मनःकल्पित कथाएँ और वंशावलियाँ भाषा के कवित्तों में कथ कर अनेक पोथियाँ रच डालीं। उदाहरण के लिए चन्द्रवरदाई का "पृथ्वीराज रासो" हमारे सामने है, जिसकी मनघड़न्त कथाओं ने ऐतिहासिक संसार को गत कई सौ वर्षों से भारी भ्रम में डाले रक्खा है और कान्यकुब्ज नरेश जयचन्द्र को न जाने कितने कुवाच्य कहलवाये हैं। "जयचन्द्र" पद ही देशद्रोही का पर्याय बन गया है। भला हो अजमेर वासी इतिहास तत्वान्वेषी महामहोपाध्याय पं० गौरीशंकर हीराचन्दजी ओझा का, जिनके शोध से पृथ्वीराजरासौ के फैलाए हुए भ्रम का निवारण हुआ और महाराज जयचन्द्र की अपकीर्ति कालिमा धुल गई।

भारत के अवनतिकाल में अपने अवनत पूर्व-पुरुषों की भारतीय इतिहास के प्रति अवहेलना को देख कर आजकल के विज्ञ समाजों ने शिक्षा ग्रहण की होगी और पठितवर्ग से संगठित आर्यसमाज का इस शिक्षा ग्रहण में विशेष भाग होगा यह मेरी धारणा थी, किन्तु इस बिजनौर मण्डल के आर्य समाज का इतिहास लिखने का कार्य करते हुए वह भ्रममूलक ही प्रमाणित हुई। इस ज़िले की आर्यसमाजों के कार्यालयों में

इस इतिहास की सामग्री का संग्रह करते हुए मुझ को भले प्रकार प्रतीत होगया कि भारतीयों की स्व-इतिहास के प्रति उपेक्षावृत्ति अभी दूर नहीं हुई है। कैसे खेद की बात है कि इस जिले के आर्य समाजों में पिछले ४०-५० वर्षों का इतिहास भी सुरक्षित नहीं है। इस ज़िले के मुख्य राज्यकेन्द्र बिजनौर का आर्यसमाज किस तिथि और संवत् में स्थापित हुआ तथा उसके प्रथम प्रधान कौन महानुभाव थे, इस साधारण सी घटना के अन्वेषण के लिये हतभाग्य लेखक को बहुत ही सिर खपाना पड़ा। बिजनौर मण्डलार्योपप्रतिनिधि सभा की आदिम स्थापना के आन्दोलन का इतिहास भी अनुपलब्धप्राय ही है। इन कठिनाइयों की विद्यमानता में जैसा कुछ बुरा भला यह प्रबन्ध लिखा जा सका है, वह आपके सामने है। बिजनौर ज़िले के प्रथम आर्य सम्मेलन की श्रीमती प्रबन्धकारिणी सभा ने जब इस कार्य का भार मेरे निर्बल कन्धों पर धरा था, तब अपनी स्वल्प सामर्थ्य और योग्यता का ज्ञान रखते हुए भी, मैंने इसको योग्यतर विद्वानों के अङ्गीकार न करने की अवस्था में केवल कार्य की आवश्यकता को अनुभव करके ही स्वीकार कर लिया था; किन्तु इस कार्य की अनगिनत कठिनाइयों का मुझ को कुछ भी आभास न था। उस समय यही सोचा था कि ८० वा १०० पृष्ठों की यह लघुपुस्तिका लिखी जायगी और उसमें रोचकता लाने के लिए १०-१५ चित्र भी लगा दिए जायंगे; किन्तु जब काम को पसन्द दिया गया और समाजों के कार्य कर्ताओं की कारकर्दगी (कार्य स्तुति) की लम्बी-लम्बी गाथाएँ आनी प्रारम्भ हुईं तथा अनेक कार्यकर्ताओं की ओर से अपने-अपने यशोगान का अनुरोध भी होने लगा। साथ ही इस पुस्तक के प्रकाशन-उसके चित्र संग्रह और मुद्रण आदि—का सब भार भी इस जराजर्जरित देह पर ही रक्खा

गया, तो छठी का दूध याद आने लगा। अपनी असमर्थता को देखकर सारे परिवार को इस कार्य में ही जोतड़ा पड़ा, यदि आयुष्मान् पं० मदनगोपाल विद्यालंकार और आयुष्मती पुत्री कुमारी सुशीलादेवी शास्त्रिणी तथा उसकी कनिष्ठा भगिनी कुमारी भद्रशीला विद्याविनोदिनी इस भार के उठाने में अपने कन्धे न लगाते, तो उसका आगे चलना असम्भव होता। हलदौर जैसे क्षुद्र उपनगर में बैठ कर ग्रन्थ लिखने और यहीं से उसके मुद्रण का प्रबन्ध करने में, जो अपार कठिनाइयाँ पड़ सकती हैं, उनको ग्रन्थ प्रकाशन-कार्य का अनुभव रखने वाले विज्ञ पुरुष ही भले प्रकार जान सकते हैं। उन का वर्णन करके इन पंक्तियों का विस्तार बढ़ाना अभीष्ट नहीं है।

इस इतिहास में जिन महानुभावों के चरितों का चित्रण किया गया है, उनके गुण और दोष दोनों का प्रदर्शन, यद्यपि ऐतिहासिक के कर्त्तव्यानुरोध से (इति + ह + आस + इस इतिहास की पूर्वोल्लिखित व्युत्पत्ति के अनुसार), मेरा कर्त्तव्य था, तथापि पौरभाग वा दोष-दर्शन के कटुकर्म से बचकर और गुण ग्रहण की अभिलाषा से प्रेरित होकर केवल गुण वर्णन का ही प्रयास किया गया है। वैसे तो यह सारा संसार ही गुणदोष का समुच्चय मात्र है, संसार की कोई वस्तु भी गुण और दोष से रहित नहीं है; किन्तु कहीं-कहीं गुणों में दोष छिप जाते हैं, जैसा कि कविकुल गुरु कालिदास की उक्ति है—एकोऽपि दोषो गुणसन्निपाते, निमज्जतीन्दोःकिरणेष्वाङ्कः, अर्थात् गुणों के समुदाय में कोई एक दोष ऐसे ही छिप जाता है जैसे चन्द्रमा की किरणों में उसकी कालिमा (कलंक) छिप जाती है। गुणों से सुशिक्षा ग्रहण करना ही इतिहास का मुख्य उद्देश्य भी है, इसलिए, आशा है कि पाठक महाभाग इस इतिहास में वर्णित गुणों के पाठ से ही संतुष्ट रहेंगे।

इस कार्य में प्रोत्साहन के लिए विनीत लेखक श्री बा० जगन्नाथशरणजी, प्रधान, बिजनौर मण्डलार्योपप्रतिनिधि सभा तथा मुख्यमंत्री वर्तमान बिजनौर आर्यसम्मेलन प्रबन्ध कारिणी सभा का सविशेष कृतज्ञ है। उन्हीं की पुनः पुनः प्रेरणा से इस प्रबन्ध ने यह रूप धारण किया है। मान्यमित्र साहित्य-मर्मज्ञ पं० पद्मसिंहजी शर्मा की कृपा का भी धन्यवाद न देना अशिष्टता होगी, जिन्होंने कलकत्ते में अपने कार्य में अति व्यग्र रहते हुए भी, इस इतिहास की चित्रावली के नामों के प्रूफ़ शुद्ध करने में पूरी सहायता प्रदान की है। साहित्यचार्य पं० वागीश्वरजी विद्यालंकार साहित्य के महोपाध्याय काँगड़ी गुरुकुल विश्वविद्यालय का भी धन्यवाद है कि उन्होंने स्वर्गीय मुंशी अमनसिंहजी का चरित्र अपने सुललित शब्दों में लिख भेजकर मुझको अनुगृहीत किया है। खेद है कि अतिसमय से पहुंचने के कारण वह अविकल रूप से इस प्रबन्ध में सन्निविष्ट न किया जासका और उसका सार मेरे अपने शब्दों में ही वर्णित है। मुरादाबाद के शर्मा मैशीन प्रिंटिङ्ग प्रेस के अध्यक्ष पं० शंकरदत्तजी शर्मा का विनीत लेख परम आभारी है कि उन्होंने अपना अमूल्य समय लगा कर स्वर्गीय राजा जयकृष्णदासजी का, अब तक किसी आर्य सामाजिक ग्रन्थ में अप्रकाशित, फ़ोटो प्राप्त करके भेजा, और इस ग्रन्थ के समय पर प्रकाशन में पूरी सहायता दी। और भी जिन महाशयों ने इस कार्य में सहायता दी है और जिन के नाम मेरी क्षीयमाण स्मृति से उतर गए हैं, उन को भी धन्यवाद देकर ये पंक्तियाँ पूरी की जाती हैं।

हल्दौर (ज़ि० बिजनौर) आर्यबन्धुओं का विनीतसेवक-

आश्विन शरत्पूर्णिमा भवानीप्रसादः

सं० १९८६ वि०

विषय-सूची ।

क्रमसंख्या		पृष्ठ संख्या
१.	प्रबन्ध-प्रवेश	(क) से (च) तक
२.	धार्मिक इतिहास का उपक्रम	१
३.	बिजनौर मण्डल का भूगोल	१३
४.	बिजनौर मण्डल की भव्यभूमि (कविता)	१८
५.	प्रथम सहजानंद-जयकृष्णदास-भारतसिंह प्रयत्नकाल	२६
६.	बिजनौर आर्यसमाज	२७
७.	मोहम्मदपुर देवमल आर्यसमाज	५६
८.	नगीना आर्यसमाज	६१
९.	नजीबाबाद आर्यसमाज	७५
१०	धामपुर आर्यसमाज	९२
११.	नहटौर आर्यसमाज	११०
१२	चाँदपुर आर्यसमाज	१२५
१३	शेरकोट आर्यसमाज	१३५
१४	पुरैनी आर्यसमाज	१४१
१५	हल्दौर आर्यसमाज	१४४
१६	बिजनौर मंडलार्योपप्रतिनिधिसभा प्रयत्नकाल	१७७
१७	विद्या-प्रचार	

चित्र–सूची ।

क्रम संख्या	चित्र	पृष्ठ संख्या
१	महर्षि दयानन्दजी	क
२	पं० भवानीप्रसाद (इतिहास–लेखक)	१
३	राजा जयकृष्णदास	८
४	श्री स्वामी दर्शनानन्द	२४
५	कुंवर भारतसिंह	३२
६	बा० जीराजसिंह	३२
७	चौ० शेरसिंह	४०
८	बा० जगन्नाथशरण B, A., L. L, B.	४८
९	राय ज्वालाप्रसाद	४८
१०	बिजनौर सहभोज	४८
११	पं० हरिशंकर दीक्षित	६४
१२	बा० हरिशंकर B. Sc.	८८
१३	चौ० अनूपसिंह	११२
१४	रा० चौ० चुन्नीसिंह	१२०
१५	पं० बिहारीलाल	१३२
१६	चौ० ज्वालासिंह	१३२
१७	मा० गुमानीसिंह	१४०
१८	पं० ठाकुरदासजी	१७२
१९	पंडिता कृपादेवी शास्त्रिणी	१७२
२०	पंडिता सुशीलादेवी शास्त्रिणी	१७२
२१	आर्य कुमारिका विद्यालय	१७२
२२	बिजनौरमण्डलार्योपप्रतिनिधिसभा के सदस्य	१९२
२३	बिजनौर आर्योपदेशक मण्डल	१९२
२४	चौ० शिवचरण	१९२
२५	महात्मा मुंशीरामजी संस्था० कांगड़ी गु०कु०	२००
२६	पं० पद्मसिंह शर्म्मा	२०१

हल्दौर (ज़ि० बिजनौर) निवासी बिजनौर मण्डल
आर्य समाज इतिहास-लेखक पं० भवानी प्रसाद जी

ओ३म्

बिजनौरमंडल-आर्यसमाज

का

* इ ति हा स *

धार्मिक इतिहास का उपक्रम

परम पिता परमात्मा की आदि सृष्टि का जब प्रारम्भ होता है, तब से प्रकृति की साम्यावस्था में विकृति आकर सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण के तारतम्य वा न्यूनाधिक्य का चक्र चलता रहता है। कभी सतोगुण के उद्रेक से दैवी सम्पत्ति का साम्राज्य होता है, तो कभी रजोगुण और तमोगुण की वृद्धि से आसुरी और राक्षसी माया का विस्तार व्यापता है। जब दैवी संपत्ति की प्रबलता होती है, तो संसार में ज्ञान का प्रकाश, सदाचार और सद्भाव प्रसार पाते हैं। जनता में धार्मिक और सदनुष्ठानी नर नारियों वा देव देवियों की अधिकता होती है। धर्म की ओर मनुष्यों की रुचि स्वयमेव

जाती है, परन्तु आसुरी और राक्षसी माया के प्रबलता पाने पर लोक में अज्ञानान्धकार, भोग विलास, कदाचार और कुकर्मों का अकाण्ड ताण्डव होने लगता है। मनुष्यों की रुचि धर्म से हट कर अधर्म में चली जाती है और जब अज्ञानान्धकार तथा कदाचारों की मात्रा अति को पहुंच जाती है, तब परम पिता की करुणा के कंपन से पुनः सतोगुण का संचार होने लगता है। दिन के प्रकाश के पश्चात् रात्रि के अन्धकार के आविर्भाव और उसके अनन्तर फिर दिन की ज्योति के जगमगाने की प्रक्रिया बराबर चलती रहती है। प्राकृतिक जगत् के समान ही मानसिक जगत् में भी यह प्रक्रिया लगातार होती रहती है। यही कारण है कि संसार में जब जब अज्ञान और अनाचार की वृद्धि अति सीमा को पहुंच गई है, तब तब महा पुरुषों और महात्माओं की ज्ञान-ज्योति का उदय होता रहा है। प्रत्येक देश और प्रत्येक काल के इतिहास में इस के उदाहरण विद्यमान हैं। इन्हीं दैवी संपदा से विशिष्ट महापुरुषों के उदय को लोक में अवतार का नाम दिया गया है, जो तत्वानभिज्ञ जनता में ईश्वर के अवतारवाद का मूल है।

महर्षि दयानंद के प्रादुर्भाव से पूर्व उषा का उदय

नियति के इसी नियम के अनुसार वीर विक्रमादित्य की उन्नीसवीं शदाब्दी में जब संसार में आसुरी और राक्षसी मोहमाया की अमर्यादा चरम सीमा को लाँघ गई, तो सब से बड़े दीन-दयाल

दयामय की दया द्रवित होकर सब देशों के आदिगुरु भारत वर्ष देश के परम पवित्र क्षितिज पर दयानन्द-आदित्य के रूप में उदय हुई। इस सर्वोत्कृष्ट ज्योतिर्मय आदित्य की प्रखर किरणों ने दैवी सम्पद् की रेखाओं से रञ्जित हृदय-कमलों में प्रवेश कर के उनका विकास प्रारम्भ किया। दैवी सम्पदा के अंश को लिए हुए यह स्वच्छ हृदय भी पूर्व से ही इस आदित्य की रश्मियों के स्वागत के लिए सन्नद्ध हो रहे थे। उन में अज्ञानान्धकार और रूढ़ि के राक्षसों को मार भगाने के कुछ क्रान्तिकारी विचार पहिलेसे ही उठ रहे थे। महर्षि दयानन्दके उदय से पूर्व प्रादुर्भूत ब्राह्म-समाजके संस्थापक स्वनामधन्य राजा राम मोहन राय तथा बाल-विधवाओं के दारुण दुःखोंसे प्रपीड़ित पं० ईश्वरचन्द्र विद्यासागर आदि अनेक महापुरुषोंके क्रान्तिकारी विचार इस स्वागत का पूर्वरूप मात्र थे। इन महानुभावों ने बद्धमूल मिथ्याविश्वासों और कुप्रथाओं के एक एक अंश को लेकर उनके उन्मूलन के लिए उग्र आन्दोलन किए थे। पाश्चात्य शिक्षा से आलोकित तथा उनके समान ही सोचने वाले साधारण पुरुषोंके मानस मुकुरोंमें भी उस अन्धकार के विनाशार्थ प्रकाश की लहरें प्रतिबिम्बित हो रही थीं।

यही कारण था कि इस समय भारत के प्रत्येक भाग में सुधार के विचार उठ रहे थे। आदित्य के उदय से पूर्व उषा की रक्तिमा का सर्वत्र प्रसार अनिवार्य ही था। बंगाल में वह ब्राह्म-समाज के मंदिरों के प्रांगणों में श्री केशवचन्द्रसेन और

महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर के रूप में जगमगा रही थी, तो महाराष्ट्र में प्रार्थना-समाज के भवन की वेदि पर न्याय-मूर्ति श्री रानाडे के रम्य रूप में विराज रही थी तथा वीर-प्रसविनी पंचनद भूमि में मुन्शी कन्हैयालाल अलखधारी की क्रांतिकारी स्वतन्त्र विचार-रेखा के रूप में दिप रही थी— विद्योतित हो रही थी। इस उषा काल के अनन्तर दयानन्द-आदित्य के उदय होते ही भारत के कोने २ में वैदिक-प्रकाश फैल गया।
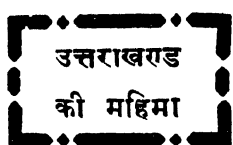
उत्तराखण्ड की महिमा

भारतवर्ष के उत्तराखण्ड के परम पवित्र प्रदेश में हिमाचल के चरणों में कलकल निनाद से बहती हुई भागीरथीके प्रशान्त तीर ऋषिमुनियों के सदुपदेशों से सदा गूंजते रहे हैं। इसीसे इस की तीरवर्ती तपोभूमियों के कई स्थानों को तीर्थ की महिमा मिलती रही है। जहां माता गङ्गा भागीरथी की निर्मल धवल-धारा हिमालय के मस्तक पर से उतर कर समभूमिमें प्रविष्ट हुई है, वहाँ प्राचीन काल में भारत की सप्त पुरियों में से महा-महिमामयी मायापुरी के समीप कुछ उत्तर को गंगा-द्वार नामक तीर्थ-स्थान है, जो आजकल हरिद्वार के नाम से विख्यात है।

हरिद्वार के कुम्भ पर पाखंड-खण्डिनी पताका का आरोपण

हरिद्वार में समय २ पर गंगातीर-सेवी वानप्रस्थ मुनियों के उपदेशामृत के पान के लिए धर्म-जिज्ञासुओं के सम्मेलन होते रहते थे, जिन में प्रत्येक बारह वर्षमें एक महासम्मेलन कुंभ के नाम से होता था, किन्तु काल की कराल गति ने इस धर्म-जिज्ञासु सम्मेलन में धर्म-ध्वजी पाखंडियों का प्रबल प्रवेश इतना अधिक कर दिया था कि आदित्य ब्रह्मचारी दयानन्द को सबसे पूर्व सम्वत् १६२४ वि० में अपनी पाखंड-खंडिनी पताका की संस्थापना इसी महामेले में उत्तराखण्ड के इस प्रसिद्ध तीर्थस्थान में करनी पड़ी थी। यहाँ से ही महर्षि दयानन्द के पाखंडखंडन-पूर्वक वैदिकमत-मंडन का मुख्य समारम्भ प्रारम्भ होता है। तब से ही वे गंगा के तीर पर अवधूत वेश में सदुपदेश देते हुए विचरते रहे। इस समय देववाणी संस्कृत ही उनके विचार-प्रदर्शन का साधन था, इस लिए उस समय उनके उपदेश का लाभ अधिकांश संस्कृतज्ञ पुरुषों को ही पहुँचता था। पश्चात् बङ्गाल में कलकत्ता पहुँचने पर उन्होंने ब्राह्मसमाज के नेता श्रीकेशवचन्द्र सेन की सम्मति से देश-काल-पात्रोपयोगी धर्म-प्रचार के नवीन साधनों को स्वीकार किया और वस्त्रधारण-पूर्वक रेल मार्ग से यात्रा करते हुए देशव्यापक भाषा हिन्दी में मौखिक और लेखबद्ध प्रचार प्रारम्भ किया।

अन्तर्वेद देश
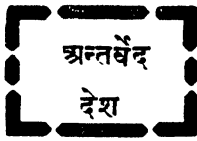
नाना नगरों और विविध स्थानों में भ्रमण करते हुए अन्तर्वेद देश (गंगा और यमुना का मध्यवर्ती द्वाबा देश) और उसके परिसर प्रान्तमें महर्षि का पवित्र पदार्पण हुआ।

यह देश आज कल अङ्गरेज़ी शासन में संयुक्त प्रान्त आगरा और अवध के नाम से विख्यात है। इन प्रान्तों ने भारतीय इतिहास की धार्मिक, सामाजिक और राजनीतिक क्रान्तियोंमें सदा मुख्य भाग लियाहै। वशिष्ठ, विश्वामित्र आदि प्रमुख वैदिक ऋषियों की तपोभूमियाँ इन्हीं प्रान्तों में थीं और पंचनद प्रदेश के पश्चात् वैदिक सूर्यकी किरणों का प्रसार इन्हीं प्रदेशों में ही हुआ था। सूर्यवंशावतंस मर्यादा-पुरुषोत्तम रघुकुलनायक श्रीरामचन्द्रजी तथा चन्द्रवंश–वैभव-वर्धक, लीलापुरुषोत्तम, सर्वनीतिनिष्णात, आनन्दकन्द श्री कृष्णचन्द्र जी की लीलाभूमि भी ये ही प्रान्त हैं।

गङ्गा और यमुना की विमल धाराएँ इन्हीं प्रदेशों को सिंचित करती हुई बहती हैं, जिन के तीरों को आर्यों की प्राचीन सप्त पुरियों में से मथुरा, मायापुरी तथा काशी इन तीन पुरियों के संस्थान होने का सुगौरव प्राप्त है।

इन में से काशी सदा से वेदवाणी की ज्येष्ठा सुता, संस्कृत भाषाका केन्द्र और सर्व विद्याओं का विद्यापीठ रही है।

इसी सर्व-प्रकाशी काशी को अपने व्याख्यान और शास्त्रार्थ–गर्जन से गुंजाते हुए महर्षि दयानन्द बंगाल से इस

अन्तर्वेद प्रदेशमें वापिस पधारे थे, और उन्होंने कौरव-पांडवों के प्राचीन हस्तिनापुर राज्य के अन्तर्गत और गंगातीरवर्ती उसकी प्राचीन राजधानी हस्तिनापुर के समीपस्थ मेरठ, मुरादाबाद आदि मण्डलों (ज़िलों) में सुदीर्घ समय तक भ्रमण करते हुए, लेखबद्ध प्रचार का उपक्रम यहीं से किया था, अर्थात् मुरादाबाद निवासी राजा जयकृष्ण दास सी० एस० आई० (C. S. I.) की सहायता से प्रथम वार सत्यार्थ-प्रकाश का प्रकाशन सं० १९३२ वि० (सन् १८७५ ई०) में हुआ था। प्रशंसित राजा जी महर्षि के परम भक्त थे। उन्होंने प्रथम वार का सत्यार्थप्रकाश अपनी लागत से छपवाने के अतिरिक्त महर्षि को शतपथादि वैदिक ग्रन्थ विदेश से मँगाकर अवलोकनार्थ दिए थे। महर्षिने भी उनको अपना परम प्रीति-पात्र मान कर अपनी उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा का आजीवन सदस्य बनाया था। यही राजा जय कृष्ण दास महोदय ज़िला बिजनौर में डिपुटी कलेक्टर पद पर सुशोभित रहे थे और इन्हीं राजा जी के द्वारा बिजनौर मण्डल के मुख्य स्थान बिजनौर नगर में महर्षि दयानन्द के आर्यसमाज का सन्देश सर्वप्रथम पहुँचा था।

बिजनौर मंडल की महिमा और उसका राजनीतिक इतिहास

यहाँ पर बिजनौर मण्डल की महिमा के विषय में भी लिखी हुई कुछ पंक्तियाँ अप्रासङ्गिक न होंगी। उसका भौगोलिक और

ऐतिहासिक वर्णन भी यहाँ प्रसङ्गोपात्त ही है, इसलिए इन विषयों का कुछ संक्षिप्त परिचय यहाँ दिया जाता है।

त्रेतायुग में वर्तमान बिजनौर ज़िले की भूमि श्री राम-राज्य के प्राचीन उत्तर कोसल देश का भाग थी।

बिजनौर मण्डल का भू-भाग वही स्थान है जिस को भारत वर्ष के नामकरण के मूल, चन्द्रवंशीय सम्राट् दुष्यन्त और शकुन्तला के सुपुत्र, सम्राट् भरत की जन्मदात्री-भूमि होने का गौरव प्राप्त है।

सम्राट् भरत का जन्मस्थान कुलपति कण्व का आश्रम कविकुलगुरु कालिदास के शकुन्तला नाटक की अमरनदी ❀ मालिनी (वर्तमान मालिन) के तीर पर बिजनौर मण्डल के उत्तर भाग में ही विद्यमान था।

❀ कार्या सैकतलीनहंसमिथुना स्रोतोवहा मालिनी
पादास्तामभितो निषण्णहरिणा गौरीगुरोःपावनाः
शाखालंबितवल्कलस्य च तरोर्निर्मातुमिच्छाम्यधः
शृंगे कृष्णमृगस्य वामनयनं कण्डूयमानां मृगीम्

कविकुलगुरु कालिदास कृत
'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' अङ्क ६ श्लो० १७

उक्त पद्यका हिन्दी अनुवाद :—

लिखन काज अब ही रह्यो, बहत मालिनी नीर।
हंसन की जोड़ी सुभग, राजति जाके तीर ॥

विजनौर जिलेमें आर्य समाज के प्रथम सन्देशहर
राजा जयकृष्णदास जी C. I. E.

द्वापरयुग में यह भूभाग कौरव-पाण्डव-राज्य हस्तिनापुर और इन्द्रप्रस्थ के अन्तर्गत था। इसी बिजनौर मण्डल में गङ्गा माता की गोदमें कौरवराज धृतराष्ट्र और पाण्डु के भ्राता नीतिनिष्णात महामुनि विदुर का आश्रम सुशोभित था, जो संप्रति बिजनौर से ४ मील दक्षिण को दारानगर ग्राम में विदुरकुटी के नाम से प्रसिद्ध है।

मौर्यकाल में यह भूखण्ड सम्राट् चन्द्रगुप्त और बौद्ध-सम्राट् अशोक के साम्राज्य में सम्मिलित था। चन्द्रगुप्त की सभामें रहने वाले यूनानी राजदूत मैगस्थनीज़की वर्णित एरीनज़ीज़ (Erineses) कविकुलगुरु कालिदास की अमर मालिनी नदी बतलाई जाती है। बौद्धकाल में यहां बौद्धधर्म का पूर्ण प्रसार था। चीनी यात्री ह्यूनसाङ्ग के वर्णनानुसार यह भू-भाग मोतीपूलो (Motipulo) राज्यका भाग था। यहां

दुहूं ओर पावन लिखूँ, हिमवन चरन पहार।
बैठे हरिन सुहावने, जिन पै करत जुगार॥
चाहत हूं औरहु लिखूँ, तरवर एक अनूप।
डारन पै बलकल वसन, परे लगन को धूप॥
नीचे ताही रूख के, हिरनी लिखूँ बनाय।
दृग कर सायर सींग से, बायों रही खुजाय॥

{ राजा लक्ष्मणसिंह डिपुटीकलक्टर बिजनौर कृत
हिन्दी 'अभिज्ञान शकुन्तला नाटक' से

बौद्धधर्म के प्रसार के प्रमाण नजीबाबाद तहसील में स्थित मयूरध्वजदुर्ग में पाए जाते हैं।

इस दुर्ग के खोदने से ज्ञात हुआ था कि उसमें का एक भग्नावशेष मृत्तिका-पुञ्ज (धुस्स),जो कि ३५ फ़ीट ऊँचा था और जिसका घेरा ३०८ फ़ीट था, आदि में बौद्धस्तूप था। उसका मध्यवर्ती कोष्ठ, जिस में बुद्ध की धातु (उन की भस्मीभूत देह की अस्थि का कोई खण्ड) सुरक्षित थी, किसी विसव में मतान्ध डाकुओं द्वारा नष्ट भ्रष्ट होगया प्रतीत होता है। परन्तु वह बौद्धकालीन मृण्मय मुद्राओं (Terracotta tablets) से पूर्ण पाया गया था, जिन के नमूने अब लखनऊ अद्भुतालय (Lucknow Musium) में सुरक्षित हैं। मयूरध्वज क़िले के चारों ओर का स्थान भी दूर तक प्राचीन भग्नावशेषों के चिन्हों से व्याप्त है।

किसी समय इस प्रदेश में जैनमत का भी प्राबल्य रहा था। उस के चिन्ह तहसील नगीना के बढ़ापुरा ग्राम से पूर्व को ३ मील बन के मध्य में स्थित एक भग्नावशेष दुर्ग और नष्ट भ्रष्ट पारसनाथ नाम से विख्यात नगर के रूप में पाए जाते हैं।

वर्गाकार (Quadrangular) दुर्ग की रेखाएं अब भी सुस्पष्ट दिखाई देती हैं, किन्तु अब वे ईंटों का ढेर मात्र रह गई हैं, जिस में पत्थर की खुदाई और चिनाई के काम यत्र तत्र उपलब्ध हैं। इस स्थानके जैन मतावलम्बियोंके अधिकार

में होने का इस के अतिरिक्त और कोई प्रमाण नहीं है कि वह परम्परागत दन्तकथा के अनुसार जैन तीर्थङ्कर श्रीपार्श्वनाथ के नामसे विख्यात है। पर इतना तो निश्चित ही है कि किसी कालमें यह भूभाग जनावाससे परिपूर्ण और सुसमृद्ध अवस्था में था। ये भग्नावशेष मयूरध्वज दुर्ग के समकालीन प्रतीत होते हैं।

मुसलमानी आक्रमण के समय शम्सुद्दीन अल्तुतमस ने अपने सिंहासनारूढ़ होने से ७ साल पश्चात् इस भूभाग को शिवालक श्रेणी तक अपने आधीन किया था और मंडावर क़स्बे पर अपना अधिकार कर लिया था। तैमूरलङ्ग का भी प्रसिद्ध विनाशक आक्रमण इस भूभाग पर अवश्य हुआ था। एक यह भी दन्तकथा प्रसिद्ध है कि पहिले मण्डावर पर, जो ११९४ ई० में देहली के अग्रवाल वैश्यों के द्वारा पुनः बसाया गया था. गुलाम शासक कुतुबुद्दीन एबक ने भी सन् ११९३ ई० में आक्रमण किया था और वहाँ एक मस्जिद बनवाई थी, किंतु मण्डावर की जामामस्जिद पर दी हुई तिथि से यह बात सम्भव प्रतीत नहीं होती। यह निश्चय है कि मुसलमानी काल में यह ज़िला मुसलमानी राज्य के कटेहर (Ketehr) प्रान्त के अन्तर्गत था।

अकबर के राज्य में ज़िला बिजनौर देहली प्रान्त की सम्भल की सरकार के (सरकार उस समय ज़िले का स्थानापन्न था) अन्तर्गत था। उस समय इस सरकार में १५ परगने

थे। अकबर के प्रिय अमात्य अब्बुलफ़ज़ल कृत आईन-ए अकबरी में बिजनौर, झालू, मँडावर, चाँदपुर, गंधौर, आज़मपुर, किरतपुर, अकबराबाद, जलालाबाद, नगीना, इस्लामाबाद—जिसमें कि उस समय परगने बढ़ापुरे की भूमि थी—, शेरकोट, सेवहारा, सहसपुर तथा नहटौर महाल नाम से अंकित हैं। उस समय बिजनौर महाल के ज़मींदार तगा और ब्राह्मण थे और ३३५५४६५ दाम मालगुज़ारी के अतिरिक्त ५० घोड़े और ५०० पैदल भी देते थे। मँडावर बैस राजपूतों से अधिकृत था। झालू और जलालाबाद के ज़मींदार जाट थे। नगीना अहीरों की ज़मींदारीमें था। इस्लामाबाद के ज़मींदार जाट थे। नहटौर तगों की ज़मींदारी में था। वर्तमान धामपुर शेरकोट परगने के नाम से प्रसिद्ध था। सन् १७२६ ई० में यहाँ मोहम्मदशाह के काल में रुहेलों का अधिकार था।

सन् १७५५ ई० में नजीबखाँ नामक एक अफ़गान (पठान) ने देहली के दरबार में प्रधानता पाकर नजीबुद्दौला की उपाधि प्राप्त की और इसी साल में नजीबाबाद नगर बसाया। उसने उसके पास पत्थरगढ़ दुर्ग का निर्माण कराया।

अन्त में देहली साम्राज्य की निर्बलता, और उसके नाम-मात्र बादशाहों के समय में अवध का नवाब, जो इस भू-भाग का भी सूबा (प्रान्तिक अधिकारी) था, देहली से स्वतन्त्र हो बैठा। उसके उत्तराधिकारी नवाब सआदत अली ख़ाँ ने ईस्ट इंडिया कम्पनी नामक अँगेज़ व्यापारियों के संघ के हथकंडों

द्वारा उसके ऋण में डूब कर यह देश उक्त ऋण के चुकाने के लिए १० नवम्बर सन् १८०१ ई० की सन्धि के अनुसार उक्त कम्पनी को दे दिया। कम्पनी के शासन के आदि में इस ज़िले की भूमि मुरादाबाद ज़िले में सम्मिलित थी। सन् १८१७ ई० में वह मुरादाबाद से पृथक् की गई और मुरादाबाद की उत्तरीय तहसील (Division) के नाम से विख्यात हुई। उस का मुख्य राज्य-केन्द्र (Headquarter) नगीना नियत हुआ और मिस्टर बोसनक्केट (Bosanquet) उसका पहिला कलेक्टर नियत हुआ। उसके उत्तराधिकारी मिस्टर एन० जे० हॉलहेड (N. J. Halhed) ने सन् १८२४ ई० में मुख्य राज्यस्थान (Headquarter) नगीने से बिजनौर को बदल दिया, क्योंकि नगीने का स्थान अस्वास्थ्यकर था, परन्तु परिवर्तन का मुख्य हेतु मेरठ के सैनिक संस्थान से नगीने की अधिक दूरवर्तिता थी। सन् १८३७ ई० तक मुरादाबाद की उत्तरीय तहसील (Division) का नाम चलता रहा और इसी वर्ष से यह ज़िला बिजनौर के पृथक् नाम से प्रसिद्ध हुआ।

बिजनौर मण्डल का भूगोल

सम्प्रति बिजनौर मण्डल (ज़िला) संयुक्त प्रदेश आगरा और अवध की रुहेलखण्ड (बरेली) कमिश्नरी के उत्तर पश्चिम कोण में स्थित है। स्थूलरूपेण यह भूखण्ड उत्तर

की ओर के अपने शीर्षकोण सहित त्रिभुजाकार है। उस की पश्चिमीय सीमा गङ्गा नदी है, जिस के पार मेरठ कमिश्नरी के अन्तर्गत देहरादून, सहारनपुर, मुज़फ्फ़रनगर और मेरठ ज़िले हैं। उत्तर और उत्तरपूर्व में गढ़वाल ज़िले का पार्वत प्रदेश है और हिमालय की उपत्यका में पर्वत के नीचे २ हरिद्वार से राम नगर, हलद्वानी और टनकपुर को जाने वाली पहाड़ी सड़क उत्तर की सीमा है। यह सड़क कंडी की सड़क के नाम से विख्यात है। पूर्व की ओर फीका नदी की धारा रामगंगा के संगम तक इस ज़िले की सीमा होती हुई उसको ज़िला नैनी-ताल और ज़िला मुरादाबाद से पृथक् करती है। इस ज़िले की दक्षिण सीमा पर मुरादाबाद का ज़िला है किन्तु यह सीमा प्राकृतिक नहीं है। इस ज़िले के उत्तरीय अक्षांश २९° २′ से २९° ५८′ तक और पूर्वीय देशान्तर ७८° ०′ से ७८° ५७′ तक हैं। उत्तर-तम बिन्दु पर स्थित ललितपुर ग्राम से लेकर पूर्वतम बिन्दु पर स्थित कोटीरौ तक इसकी एक भुजा ५६ मील है, कोटीरौ से लेकर दक्षिण पश्चिम कोण पर स्थित कम्हारिया तक दूसरी भुजा ५७ मील है और कम्हारिया से ललितपुर तक तीसरी भुजा ६२ मील है। इसका क्षेत्रफल १७८९·५ वर्गमील के लगभग है। इस ज़िले का उत्तरीय भाग केवल २५ वर्गमील पर्वत प्रदेश है, जो शिवालक श्रेणी का पूर्व को बढ़ता हुआ भाग है। वह प्राचीन काल में नील पर्वत और अब चण्डी पर्वत कहलाता है। महाभारत में वह कनखलगिरि के नाम से

उल्लिखित है। इस पर्वत श्रेणी के नीचे २ दो मील से लेकर दस मील तक चौड़ी वनाच्छादित उपत्यका चली गई है। इस उपत्यका वा वनकटिबन्ध से दक्षिण को इस ज़िले की सीमा तक समस्थली (समथल भूमि) विद्यमान है, जिस में भागीरथी गङ्गा और उसकी सहायक नदियाँ पीलीरौ, रवासन, कोटावाली, लहपो, मालिन (कविकुलगुरु कालिदास की शकुन्तला की मालिनी), छोइया, बान, गाँगन, खोह और राम-गङ्गा बहती हैं। इनमें से पहिली तीन पर्वतीय धाराएँ हैं और वनकटिबन्ध में ही बह कर गङ्गा में मिल गई हैं।

वृक्ष

इस ज़िले के वन्यवृक्षों में साल, सेमल (शाल्मली), सिरस (शिरीष), खैर (खदिर), ढाक (किंशुक), तेंदू (तिंदुक, जिसका गांभ आबनूस होता है), हल्दू और शीशम (शिंशपा) मुख्य हैं। बांस की भी बहुतायत है।

पशु

वन्य पशुओं में हाथी, बाघ (व्याघ्र), रीछ, बघेरा (तरक्षु), भेड़िया (वृक), जंगली कुत्ता (वन्य श्वा), गीदड़ (शृगाल), और लोमड़ी आदि हैं। हरिणों की जाति में साम्भर, चीतल, काकर, पाड़ा मुख्य हैं। नीलगाय और बारहसिंगे भी बन में पाए जाते हैं।

जल वायु

बिजनौर ज़िले का जल वायु संयुक्त प्रान्त के ज़िलों में प्रायः सब से उत्तम है और उपत्यका के अतिरिक्त समस्थली का स्वास्थ्य सराहनीय है।

कृषि

इस ज़िले की अधिकांश कृषि देवमातृक है। नदीमातृक भूमि यहाँ बहुत कम है। केवल दो कुल्या (नहरें) खोह और गाँगन नदियों से काटकर निकाली गई हैं और वे नगीना और धामपुर तहसीलों की थोड़ी सी भूमि को सींचती हैं। कृषि की फ़सलों (शस्यों) में सावनी (श्रावणी = ख़रीफ़) और साढ़ी (आषाढ़ी = रबी) ही मुख्य हैं। ईख वा गन्ने की गणना प्रायः सावनी में की जाती है। कभी उसको और कपास की खेती को अतिरिक्त शस्य (फ़सल ज़ायद) भी समझा जाता है। ज़िले बिजनौर में ईख और कपास की खेती भी पर्याप्त होती है। ईख से बनी हुई इस ज़िले की शर्करा (खांड) यहाँ के राजस्व (माल गुज़ारी) का मुख्य साधन है। इस ज़िले के क़िरतपुर और हल्दौर कसबे खाँड बनाने के प्रमुख स्थान हैं।

शिल्प

यहां की कपास का खद्दर भी यहाँ प्रचुर परिमाण में बुना जाता है और ग्रामीण जनता उसी से अपना तन ढांपती है। महात्मा गांधी की कृपा से अब उपनगरों (क़सबों) में भी उस का प्रचार हो चला है। सन् १९०१ ई० में यहाँ ६६००० जुलाहे कपड़े

बुनने के व्यवसाय से अपने परिवारों सहित अपना निर्वाह करते थे। अफ़ज़लगढ़ का खद्दर सब से बढ़िया होता है और वहाँ के एक जुलाहे ने सन् १८६७ ई० की आगरा प्रदर्शिनी में उत्तम खद्दर के लिए चाँदी का पदक प्राप्त किया था। इस ज़िले के शेरकोट और हल्दौर आदि क़स्बों में खद्दर पर छपाई का काम भी सुन्दर होता है और बिछौने बन कर बड़ी राशि में बाहर जाते हैं। अन्य शिल्पों में क़सबे नगीने का आबनूस की लकड़ी पर खुदाई का काम संसार में प्रसिद्ध है। इस सुन्दर काम ने लण्डन, ग्लासगो, पैरिस और भारत के अनेक स्थानों की प्रदर्शनियों में पारितोषिक प्राप्त किये थे।

किसी समय नगीना बन्दूक़ों के लिए भी विख्यात था और यहाँ की बनी हुई ४ बन्दूक़ें सन् १८६७ ई० की फ्राँस की पैरिस प्रदर्शनी में प्रत्येक ३७५ फ्रैंक को हाथोंहाथ बिकी थीं।

नजीबाबाद और धामपुर भी शस्त्रनिर्माण में प्रसिद्धि प्राप्तकर चुके हैं। बिजनौर का समीपवर्ती ग्राम बुख़ारा किसी समय चाक़ुओं के लिए प्रसिद्ध था।

धामपुर और नजीबाबाद का निकटवर्ती ग्राम साहनपुर पीतल और कांसी के बरतनों के शिल्प के लिए विख्यात है और आर्य (हिन्दू) गृहों की पाकशाला का कार्य अभी तक इन्हीं बरतनों से चलता है। नगीने और किरतपुर में काँच का काम भी बहुतायत से होता है तथा बालावाली स्टेशन पर 'गङ्गा ग्लास वर्क्स' भी काँच के काम के लिए प्रसिद्ध है। किसी

समय किरतपुर और नगीने में कवंगरी (कुरसी और बक्स आदि के चित्रण और रङ्गाई) का काम भी बहुत और भव्य होता था। मण्डावर किसी समय सुनहरे और रुपहले चित्रित कुट्टी के काम के लिए अपना सानी (समकक्ष) न रखता था। वहां का एक एक कुट्टी का क़लमदान कई २ सौ रुपये को बिकता था, किन्तु खेद है कि अब पश्चिमीय रुचि के प्रचार से यह शिल्प वहाँसे नष्ट होगया है। कराल काल की कुटिल गति की बलिहारी है।

इसी बिजनौर मण्डल की महिमा में एक उदीयमान कवि हल्दौरस्थ श्री पंडित टीकाराम भट्ट विशारदकी कविता वाचकवृन्द के मनोरञ्जनार्थ यहाँ सन्निवेशित है।

बिजनौर-मण्डल की भव्य-भूमि

"भू-मण्डल में भव्यता, भारत की विख्यात।
जिस के उत्तरखण्ड को, देव सदा ललचात॥
जगमें जिसके तुल्य नहीं है, पुण्य पूज्य भू और।
उसी खंड की उपत्यका में, बसा ज़िला बिजनौर॥
शिव अलकावलि हरित-वर्ण, उत्तर-दिशि सोहै।
पूरब नैनीताल, बनावलि से मन मोहै॥
ज़िला मुरादाबाद, दिशा दक्षिण की शोभा।
पतित-पावनी-गंग, बहै पश्चिम मन-लोभा॥
राम-गंग, गांगन गमन, करैं मुरादाबाद को।
मालन, छोइया, गंगजल, रखतीं कलकलनाद हो॥१॥

वन-उपवन-परिपूर्ण, यहाँ की भूमि निराली ।
गेहूँ, तिलहन, दलहन, इक्षुमय शोभा-शाली ॥
वासन्तिकता-भरे, सदा रहते तृण तरुवर ।
कोकिल, कीर, कपोत, आदि प्रमुदित पक्षीवर ॥
सर सरिता अरु कूप हैं, सभी स्वादु-जल-पूर्ण ।
जो स्वर्गिक पीयूष का, करते हैं मद चूर्ण ॥२॥
कण्वाश्रम का पता, यही थल बतलाता है ।
"भरतजननि" की जन्मभूमि, यह कहलाता है ॥
सुधा सलिल से भरी, मालिनी लहराती थी ।
त्रिविध ताप से तप्त, जनों को मरसाती थी ॥
कविकुल गुरु की कीर्ति को, है इसने चमका दिया ।
शकुन्तला के रूप में, रत्न अमोलक है दिया ॥३॥
इसी जननि की गोद, कभी ऐसे सुत जन्मे ।
पकड़ सिंह के कान 'दाँत गिनते'† थे वन में ॥
हुए राज नयनिपुण, भक्ति भावों के प्रेमी ।
विज्ञ विदुर से यहीं ❀, धर्मपालक दृढ़ नेमी ॥

† अर्धपीनस्तनं मातुरामर्दक्लिष्टकेसरम् ।
प्रक्रीडितुं सिंह-शिशुं बलात्कारेण कर्षति ॥
(अभिज्ञान-शाकुन्तलम्)

❀ दारानगर में विदुरकुटी आज तक विदुर महाराज की स्मृति में प्रसिद्ध है ।

गूगा पीर चौहान का, यहीं रहा ननसाल‡ है ।
ऊजड़ खेड़ा रेहड़ ढिंग, जिसका चिन्ह विशाल है ॥४॥
सुनते हैं हो गये, यहीं मोरध्वज दानी ।
पितृभक्त, श्री ताम्रध्वज से सुत सज्ञानी ॥
चंद्रवंश नृपवर्य, इसी थल निकट विराजे ।
बसे रुहेले कभी, कभी पिण्डारी गाजे ॥
इसके साफ़ सबूत हैं, राजपूत इस भूमि के ।
जिन पर जब विपदा पड़ी, लिया उन्हें मुख चूमके ॥५॥
थी खद्दर की खान* कभी यह भूमि हमारी ।
कई नुमायश बीच, इनामी बाज़ी मारी ॥
खरी खांड अरु आबनूस‖ का काम बताओ ।
छोड़ ज़िला बिजनौर, कहाँ तुम अच्छा पाओ ॥
दिव्य धरोहर से भरी, यह शुभ भूमि अनूप है ।
आर्य-सभ्यता का जहाँ, गुरुकुल* गौरव स्तूप है ॥६॥

---

‡ कस्बे रेहड़ से काशीपुर तक लगातार उजड़े हुए खेड़े के निशान मिलते हैं । प्रसिद्ध है कि यह खेड़ा गूगा की माँ बाछल के बाप की राजधानी थी ।

* कसबे अफ़ज़लगढ़ के जुलाहों को सन् १८७५ ई० की कलकत्ता प्रदर्शनी में उत्तम खद्दर पर इनाम मिला था । (देखो हिन्दी विश्वकोष)

‖ कस्बे नगीने का आबनूस का काम प्रसिद्ध है ।

* काङ्गड़ी गुरुकुल विश्वविद्यालय ।

धर्म-हेतु बलिदान हुईं यहां नारि अनेकों ।
सती मठों की भीड़, ज़रा रेहड़* जा देखो ॥
हैं अनेक स्थान, "योग के योग"‡ अनोखे ।
जिनमें शान्ति अपार, लाभ करते नर चोखे ॥
कहो, कहाँ पर पाओगे, ऐसी अनुपम शुभ मही ।
अन्न पान नीरत्व मय, शुद्ध दुग्ध-घृत दे रही ॥७॥

बिजनौर मण्डल में वैदिक धर्म का संदेश

इसी विविध गुणावलि-विशिष्ट बिजनौर-मण्डल की सुरम्यस्थली में भी महर्षि दयानन्द के वैदिक शंखनाद की प्रतिध्वनि विक्रमीय संवत् १९३८ (सन् १८८१ ई० में) पहुँची अर्थात् उक्त सम्वत् में वैदिक धर्म के पुनरुद्धारक आर्यसमाजका आन्दोलन ज़िला बिजनौर में आरम्भ हुआ ।

इस ज़िले के किसी स्थान में आर्यसमाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द का स्वयं शुभागमन नहीं हुआ था । उन के शिष्य-प्रशिष्यों और अनुयायियों द्वारा ही यहाँ वैदिक

---

* क़स्बे रेहड़ के चारों ओर कई हज़ार सती मठों के चिन्ह पाये जाते हैं, जिन में के लगभग १०० मठ अब भी विद्यमान हैं।

‡ गङ्गा तट पर नाँगल और गंज में तथा रेहड़ के बन में कई स्थान योगाभ्यास के लिये परम उपयोगी सिद्ध हुए हैं।

धर्मका प्रकाश पहुँचा था। इस ज़िलेमें आर्यसमाज के प्रचार-प्रयत्नों को कालक्रम और कार्य के महत्व के अनुसार तीन भागों में विभक्त कर सकते हैं।

तीन प्रचार-प्रयत्न-काल

सब से प्रथम महर्षि दयानन्द द्वारा संन्यासाश्रम में दीक्षित स्वामी सहजानन्द जी का इस ज़िले में सम्वत् १९४० विक्रमी (सन् १८८३ ई०) में शुभागमन हुआ था और उक्त स्वामी जी ने महर्षि दयानन्द के अनन्य भक्त राजा जयकृष्णदास जी डिप्युटी कलेक्टर बिजनौर तथा कुँवर भारतसिंहजी ज्वाइन्ट-मैजिस्ट्रेट बिजनौर कीसहायता से इस ज़िले के प्रमुख स्थानों (बिजनौर, मोहम्मदपुर देव-मल, नगीना और नहटौर आदि) में धर्म-प्रचारार्थ भ्रमण किया था और इन स्थानों में आर्यसमाजें स्थापित हुई थीं। इस लिए इस प्रथम उद्योग को सहजानन्द–जयकृष्णदास–भारतसिंह-प्रयत्नकाल का नाम दे सकते हैं।

श्री पण्डित कृपाराम जी

द्वितीय प्रयत्न पण्डित कृपारामजी (पश्चात् संन्यासाश्रम में स्वामी दर्शनानन्द जी) के इस ज़िले में पदार्पण से प्रारम्भ होता है।

श्री प० कृपाराम जी का जन्म, सुप्रसिद्ध देशभक्त भारतीय राजनीतिके कर्णधार पञ्जाबकेसरी श्री लाला लाजपतराय जी की जन्मभूमि पञ्जाब प्रान्तान्तर्गत लुधियाना ज़िले के

जगरावाँ व्यापारिकनगर (मण्डी) के एक सम्पन्न ब्राह्मण कुल में हुआ था। काशीमें आपके पितामहका एक क्षेत्र (अन्नसत्र) था और वे अपनी वृद्धावस्था में काशीवास करते थे। घरपर कुछ पढ़ लिखकर पं० कृपाराम जी भी अध्ययनार्थ उनके पास काशी चले गए। आपकी बुद्धि बड़ी विलक्षण थी, दर्शनशास्त्र में बचपन से ही रुचि थी। काशी के सुप्रसिद्ध विद्वान् स्वामी मनीष्यानन्द जी पर आपकी विशेष भक्ति थी। दर्शनों का पाठ आप उन्हीं के यहाँ सुनते थे। सुनते सुनते वे दर्शनशास्त्र के बहुश्रुत तथा लब्धप्रवेश ज्ञाता बन गए। आपने अपने व्यय से काशी में एक संस्कृत पाठशाला भी बहुत दिन चलाई। उस समय आर्यसामाजिक विद्यार्थियोंको काशीके पण्डित पक्षपात वश पढ़ाते न थे। आर्यविद्यार्थी छिप छिपा कर—आत्मगोपन-करके—विद्याभ्यास करते थे। उन की इस असुविधा को दूर करने के लिये ही पं०कृपारामजी अपनी यह पाठशाला चलाते थे। यह पाठशाला उन दिनों आर्यविद्यार्थियोंके लिये बहुत ही उपयुक्त प्रमाणित हुई। पाठशाला में पं० काशीनाथ जी, जो पीछे कांगड़ी गुरुकुल विश्वविद्यालय में दर्शनशास्त्र के महोपाध्याय थे और वहाँ गुरुजी के नामसे सुप्रसिद्धथे, मुख्याध्यापक थे। श्री पण्डित गङ्गादत्त जी (पश्चात् कुछ वर्षों तक कांगड़ी गुरुकुल विश्वविद्यालय के आचार्य तथा वर्तमानज्वालापुर महाविद्यालय के आचार्य श्री स्वामी शुद्धबोधतीर्थ जी) और श्रीपण्डित भीमसेनजी(पश्चात् कांगड़ी गुरुकुल विश्वविद्यालय

के साहित्याध्यापक और उक्त महाविद्यालय ज्वालापुर के मुख्याध्यापक तथा संन्यासाश्रम में स्वामी भास्करानन्द जी) ने इस पाठशाला में ही शिक्षा पाई थी। पण्डित कृपाराम जी ने इस पाठशाला के अतिरिक्त काशी में एक तिमिरनाशक प्रेस भी खोला था और अष्टाध्यायी की काशिका-वृत्ति और पातञ्जलमहाभाष्य को, जो उस समय दुर्लभ थे और क्रमशः १५) और ३०) में बिकते थे, अपने प्रेस में छपाकर विद्यार्थियों के लिये क्रमशः ३) और १०) में सुलभ बना दिया था। बहुत से असमर्थ विद्यार्थियों को उन्होंने ये पुस्तकें बिना मूल्य भी दी थीं। उन्होंने अपने भाग की सारी पैतृक सम्पत्ति इन्हीं कामों में काशी रहते रहते ही व्यय कर डाली—संस्कृत के प्रचार में ही सर्वस्व स्वाहा कर दिया। काशी छोड़ने के पश्चात् पण्डित कृपाराम जी ने युक्तप्रान्त को अपना कार्यक्षेत्र बनाकर यहाँ वैदिकधर्म-प्रचार करना प्रारम्भ किया। कई जगह गुरुकुल विद्यालय) १. बुलन्दशहर ज़िलाऽन्तर्गत सिकन्दराबाद, २. बदायूँ, ३. ज्वालापुर हरिद्वार, ४. मुज़फ़्फ़रनगरज़िलाऽन्तर्गत बरालसी, ५. रावलपिण्डी ज़िलाऽन्तर्गत पोठोहार) खोले। अनेक पाठशालाएँ स्थापित कीं। बहुत से साप्ताहिक और मासिक पत्र निकाले। कतिपय प्रेस खड़े किये। सैकड़ों ट्रैक्ट लिखे। बीसियों शास्त्रार्थ किये और सहस्रों व्याख्यान दिये। कई पुस्तकों का उर्दू और हिंदी में अनुवाद किया। इन कामों की उन को धुन थी। उन की बाणी और लेखनी समान रूपसे

श्री स्वामी दर्शनानन्दजी

चलती थी। उन की तर्कनाशक्ति अद्वितीय थी। वे कैसे ही प्रबल प्रतिपक्षी को युक्तिजाल में फँसा कर पछाड़ देते थे। उन में और भी बहुतसे गुण थे, परन्तु यहाँ प्रचार-कार्य्य से सम्बद्ध ही उन की गुणावली का दिग्दर्शन कराया गया है। खेद है कि परिडत कृपाराम जी का कोई चित्र बहुत गवेषणा करने पर भी न मिल सका, इसलिए संन्यासाश्रम में उन के दर्शनानन्द रूप की प्रतिकृति ही यहाँ दी जाती है।

प्रशंसित परिडत कृपाराम जी का बिजनौर ज़िले में सम्वत् १९५२–०५३ वि० (सन् १८९५—१८९६ ई०) में शुभागमन हुआ था अर्थात् इस काल से ही उन्होंने ज़िला बिजनौर में धर्मप्रचार-प्रयत्न प्रारम्भ किया था। इस काल में कई पूर्वस्थापित आर्यसमाजों का पुनरुज्जीवन हुआ और कई प्रमुख स्थानों में नवीन आर्य्यसमाजें स्थापित हुईं। इसलिए इस द्वितीय प्रचार-आन्दोलन का नाम कृपारामप्रयत्नकाल होना चाहिए।

इस ज़िले में वैदिकधर्म-प्रचारका तृतीय प्रयत्न बिजनौर-मरडलार्योपप्रतिनिधिसभा के स्थापनाकाल से आरम्भ हुआ था, जो अब तक चल रहा है। इसलिए इस तृतीय प्रयत्नका नामकरण बिजनौरमरडलार्योपप्रतिनिधिसभा-प्रयत्नकाल उचित होगा।

आर्य्यसमाजके कर्मकलापको धर्मप्रचारऔरविद्याप्रचार के दो विभागों में भी पृथक् पृथक् वर्णन किया जासकता है।

इसलिए इस इतिहास में आगे आर्य्यसमाज का वर्णन काल-क्रम से उपर्युक्त तीन प्रयत्नों और दो विभागों में किया जायगा।

प्रथम सहजानन्द-जयकृष्णदास-भारतसिंह-प्रयत्नकाल।

श्री स्वामी सहजानन्द जी

स्वामी सहजानन्द को महर्षि दयानन्द ने संन्यासाश्रम में दीक्षित कर के फ़र्रुख़ाबाद से प्रकाशित 'भारत सुदशा प्रवर्तक' मासिकपत्र के फ़रवरी सन् १८८४ ई० के अङ्क में पृष्ठ १८ पर आर्यसमाज के प्रधान आदि के नाम निम्नलिखित विज्ञापना प्रकाशित कराई थी :—

"सर्व आर्य-समाजस्थ प्रधानादि आनन्दित रहो।

विदित हो कि स्वामी सहजानन्द सरस्वती उपदेशक, इसने संन्यासाश्रम धारण भी मुझसे किया है, आता है। इस को जब तक वहाँ रहे अन्न स्थानादि और जब एक समाज से दूसरे समाज को जाय तब रेल के भाड़े आदि से सत्कार किया करना। जिस समाज से दूसरे समाज को जाना चाहे उस समाज का मन्त्री दूसरे समाज के मन्त्री के पास पत्र भेज देवे कि वह स्टेशन पर आके निवासस्थान को ले जावे।

मिती फाल्गुन वदी १२ — द० दयानन्द सरस्वती

मंगल सम्वत् १९३९ वि० — चित्तौड़—मेवाड़"

(उपर्युक्त पत्र लाहौर निवासी पं० भगवद्दत्त जी रिसर्च स्कॉलर द्वारा प्रकाशित 'ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन, प्रथम भाग' से उद्धृत किया गया है ।)

इस से विदित होता है कि स्वामी सहजानन्द महर्षि दयानन्द द्वारा संन्यासाश्रम में दीक्षित आर्यसमाज के प्रथम उपदेशकों में से थे । बिजनौर ज़िले में सर्व प्रथम उन्हीं के द्वारा आर्यसमाजके मौखिक प्रचार ने प्रवेश पाया था ।

बिजनौर-आर्यसमाज

स्वामी सहजानन्द जी अन्य आर्यसमाजों में भ्रमण करते हुए सम्वत् १६४० वि० (सन् १८८३ ई०) में बिजनौर पहुंचे थे और उन्होंने इस ज़िले के प्रमुख उपनगरों (बिजनौर, मोहम्मदपुर देवमल, नगीना, नहटौर और हल्दौर आदि) में धर्म-प्रचार किया था, जिस का विस्तृत विवरण उन उन स्थानों के वर्णन में आगे आयगा । सब से प्रथम इस ज़िले के मुख्य राज्यकेन्द्र (Headquarter) बिजनौर में सम्वत् १६४० वि० की वर्षाऋतु (सन् १८८३ ई०) में आर्यसमाज की स्थापना हुई थी । बिजनौर-आर्यसमाज के सर्वप्रथम-प्रधानपद को राजपूत वंशाऽवतंस इलाहाबाद ज़िलाऽन्तर्गत शङ्करगढ़ ग्रामवासी कुँवर भारतसिंह जी ने, जो उस समय बिजनौर में ज्वाइन्ट मैजिस्ट्रेट थे, सुशोभित किया था ।

प्रथम प्रधान
श्री कुंवर भारतसिंह जी
ज्वाइंट मजिस्ट्रेट·
बिजनौर
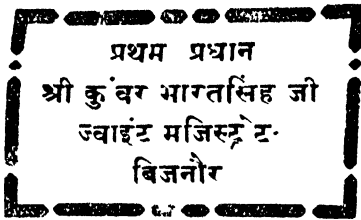
श्री कुँवर भारतसिंह जी चालुक्य (सोलङ्की) क्षत्रिय कुल के अंकुर थे और उस की शाखा बघेलवंश में थे। वे ज़िले इलाहाबाद (प्रयाग) के अन्तर्गत बारा सामन्त-राज्य (Estate) के प्रभु महाराव राजा वनस्पति सिंह जी के सुपुत्र थे। विक्रम की नवीं शताब्दी में इस रियासत के पूर्व-पुरुष गुर्जर (गुजरात) प्रान्त में राज्य करते थे, किन्तु आर्य-धर्म-ध्वंसक, मूर्तिभञ्जक, कुप्रसिद्ध महमूद-ग़ज़नवी के गुज-रात पर आक्रमण के विप्लवमें वे अपना देश छोड़कर यत्र तत्र अपने दिन बिताते हुए तेरहवीं शताब्दी में वर्तमान मध्य-भारत एजेंसी (Central India Agency) के बघेल खण्ड में आ बसे थे और वर्तमान रीवां राज्य के संस्थापक हुए। कुंवर भारतसिंहजी का वंश भी रीवां राज्य के संस्थापकों की शाखा है। कुँवर भारतसिंह जी का जन्म सम्वत् १९१० वि० (सन् १८५३ ई०) में हुआ था। उन्होंने बनारस कालिज मे शिक्षा पाई थी और उच्च योग्यता सम्पन्न होकर सन् १८८० ई० में असिस्टेन्ट मैजिस्ट्रेट (Assistant Magistrate) के पद पर नियुक्ति प्राप्त की थी। वे सर्व प्रथम ज़िले बिजनौर में भेजे गए। यहाँ ये इस पद पर, जो उस समय ज्वाइन्ट मजिस्ट्रेट (Joint Magistrate) कहलाता था, कई वर्ष

तक सुशोभित रहे और अपने सुशासन और न्याय के लिए अपने समय से लेकर अब तक इस ज़िले में विख्यात हैं।

अपने शासनकाल में इन्होंने नजीबाबाद उपनगर के खेदजनक और बदनाम हिन्दुमुसलमान बलवे को दबाने में, जो मोहर्रम के अवसर पर किसी ताज़िये के विवादास्पद मार्ग के कारण सन् १८८८ ई० में हुआ था, बड़ी निर्भीकता और बुद्धिमत्ता दिखलाई थी। बलवे की शान्ति पर इन्होंने गवर्न्मेंन्ट और प्रजा से प्रशंसा प्राप्त की थी तथा डिवीज़नल कमिश्नर के विश्वासपात्र प्रमाणित हुए थे।

बिजनौर-आर्यसमाज के प्रधान पद पर विराजते हुए इन्होंने बिजनौर-आर्यसमाज की उन्नति और वैदिकधर्म-प्रचार में प्रबल प्रयत्न किया था और स्वामी सहजानन्द जी को इस ज़िले के बिजनौर, मोहम्मदपुर देवमल, हल्दौर आदि उपनगरों में धर्म-प्रचारार्थ भेजने में सहायता दी थी। इन्होंने बिजनौर-आर्यसमाज को ५००) दान दिया था। ये विद्या-प्रचार के बड़े प्रेमी थे। अपने व्यय से अपनी रियासत में एक वर्नाक्यूलर स्कूल चलाते रहे और एक पुस्तकालय भी स्थापित किया था, जिसमें २००० पुस्तकें हैं। बिजनौर से बदलकर वे गाज़ीपुर और बान्दा आदि स्थानों पर कलैक्टर और जज के उच्च पदों पर यशपूर्वक अपना कर्तव्यपालन करते रहे। सन् १६०७ ई० में उन्होंने पेंशन लेली और प्रान्तिक लेजिस्लेटिव कौंसिल के मेम्बर, क्षत्रिय हितकारिणी महासभा के मन्त्री और क्षत्रिय

हिवट हाईस्कूल बनारस की प्रबन्धकारिणी सभा के उपप्रधान रह कर देश सेवा करते रहे। वे घोड़े की सवारी में बड़े दक्ष और मृगया (शिकार) में भी बड़े निपुण थे। सहिष्णुता उन का विशेष गुण था। एक बार उन्होंने अपने एक दुम्बल (फोड़े) पर बिना क्लोरोफ़ार्म के ही शल्यक्रिया (Operation) कराई थी। ११ नवम्बर सन् १६२० ई० को आपने अपनी इह-लोकलीला समाप्त की। इस समय उनका एक पुत्र कुँवर लाल-रत्नाकरसिंह २० वर्ष का है और प्रयाग गवर्न्मेंन्ट हाईस्कूल में शिक्षा पाता है। इनकी रियासत की गद्दी पर इस समय भी इनके ज्येष्ठ भ्राता महाराव राजा रामसिंह जी, जिनकी आयु इस समय ८० वर्ष की है, विराजमान हैं। उनके भी दो पुत्र कुँवर रुद्रप्रताप सिंह और कुँवर रामेश्वर प्रतापसिंह हैं।

(यह वृत्तान्त मुंशी माधवप्रसाद जी से, जो एक वयो-वृद्ध सज्जन हैं और कुँवर भारतसिंह जी के पास बिजनौर में रहा करते थे, पण्डित देवीदत्त जी मद्यनिवारणोपदेशक (Temperance Preacher) द्वारा पूछकर लिखे गये हैं।)

राज-कर्मचारि-वर्ग का आर्यसमाज से सहयोग

राजा जयकृष्णदास और कुंवर भारतसिंह जी इन दो राज-पुरुषों के प्रभाव और प्रयत्न से राज्यकेन्द्र नगर बिजनौर के आर्यसमाज ने बड़ी उन्नति पाई थी। न्यायालयों (कोर्ट) के कर्मचारियों के शिक्षितवर्ग ने बिजनौर-आर्यसमाज की

सदस्यता स्वीकार की थी और उसकी सदस्यावलिमें अधिक संख्या उन ही की रही है। यह इस बात का प्रबल प्रमाण है कि उस समय आर्यसमाज के प्रारम्भिक युग में राजकर्मचारी आर्यसमाज को राज्य-विप्लववादी वा राजनीति-आन्दोलक संस्था समझकर भय न खाते थे और न ही शासकों की वक्र-दृष्टि उस पर थी। उस समय आर्यसमाज विशुद्ध धार्मिक और समाजसुधारक संस्था समझा जाता था। वह समय बहुत पीछे आया, जब कि आर्यसमाज के प्रतिस्पर्धी ईसाई और मुसलमान मतानुयायिओं ने. हिन्दुओं में से समृद्ध सस्य के अपहरण की अपनी हानि देखकर—हिन्दुओं की जिस भारी फ़सल को वे अब तक काटते चले आ रहे थे उसमें आर्यसमाज द्वारा रोक टोक पाकर—शासन-विभाग के प्रमुख प्रभुओं के कान भरने प्रारम्भ किए। उन की कर्णजप की क्रूरकृति (कानाँ फूँसी) रङ्ग लाई और आर्यसमाज और सामयिक शासन-विभाग के मध्य में एक आखात (Gulf) खोदा जाकर उत्तरोत्तर अधिकाधिक गहरा होता रहा, जिस के पटने की आशा अब दुराशामात्र प्रतीत होती है। किसी कवि की यह उक्ति यहाँ पूर्ण चरितार्थ हो रही है कि—

अहो खलभुजङ्गस्य, विपरीतो वधक्रमः।
कर्णे दशति चैकस्य, प्राणैरन्यो वियुज्यते ॥

अर्थ—ओह! धूर्तरूपी साँप की प्राण लेने की कैसी

उलटी रीति है कि वह काटता तो किसी और के कान में है और प्राण किसी और के ही जाते हैं।

आर्यसमाज में न्यायालयों से सम्बन्ध रखने वाले राजपुरुषों और वकीलवर्ग के प्रचुर प्रवेश का एक यह भी कारण था कि उन्होंने उदरार्थी और अपस्वार्थी पुरोहित और पुजारीवर्ग द्वारा प्राप्त संकीर्ण पाठ्य-प्रणाली से पृथक् रहकर अभिनव उदार शिक्षा पाई थी, जो स्वभावतः उनके हृदयों में पुरानी परम्परागत रूढ़ियों और मिथ्याविश्वासों में घोर क्रांति उत्पन्न करके महर्षि दयानन्द के वैदिकधर्मरूपी बीज के वपन के लिए उर्वरा क्षेत्र उत्पन्न कर रही थी और परिणामतः आदि में आर्यसमाजके आन्दोलनमें वे ही अधिकतर सम्मिलित हुए।

बिजनौर-आर्यसमाज के आदि-मन्त्री बा० जीराजसिंह जी

बिजनौर आर्यसमाज के आदिम मन्त्री भी एक प्रसिद्ध वकील महाशय बाबू जीराज सिंह हो थे। ये महाशय अपने समय में अदालत फ़ौजदारी के सफल वकील होते हुए भी आर्य-जाति की सेवा में श्वेतश्मश्रु (वृद्ध) हो गये हैं।

इन्होंने बिजनौर ज़िले को किसी हिन्दु समाचारपत्र से शून्य पाकर और मुसलमानों के अख़बारों द्वारा उनके एक पक्ष का प्रचार और हिन्दु-पक्ष की हानि देखकर सन् १८८८ ई० में तोहफ़ेहिन्द नामक उर्दू साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन

बिजनौर आर्य समाज के प्रथम प्रधान कुँवर
भारत सिंह जी ज्वाइण्ट मजिस्ट्रेट बिजनौर ।

बा० जोराज सिंहजी प्रथम मन्त्री बिजनौर आर्य समाज

बिजनौर से प्रारम्भ किया था, जिसको वे ४२ वर्षों से आज तक सहस्रों रुपयोंकी हानि उठाकर बराबर चला रहे हैं और आर्य-जनता के हानि लाभ पर उसमें बराबर आन्दोलन करते रहते हैं। आर्यसमाज के कार्यों के समाचार देने वाला बिजनौर ज़िले में अकेला यही एक पत्र है। जब जब हिन्दु-पक्ष पर आघात करने वाले लेख विपक्षी पत्रों में प्रकाशित हुए हैं तब तब तोहफ़ेहिन्द उनके युक्तियुक्त और सारगर्भित उत्तर देने में कभी पश्चात्पद नहीं रहा है। खेद है कि बिजनौर ज़िले की हिन्दु-जनता अपने एक हिन्दु-पत्र को भी उस के स्वयं अपने पैरों पर खड़ा रखने में असमर्थ है। जहाँ उर्दू पत्रोंकी बहुतायत के लिए बिजनौर का ज़िला दूसरा लाहौर गिना जाता है अर्थात् उर्दू पत्रों की संख्या में लाहौर से उतर कर बिजनौर का ही नम्बर है और इस का उल्लेख सरकारी विवरणी तक में भी आ चुका है, वहाँ पेट पर पत्थर बाँधकर हिन्दु जाति की सेवा करने वाले केवल एक इस हिन्दु-पत्र की वृद्धावस्था में लुड़खड़ाहट करुणाजनक ही है। न जाने आर्यजाति अपने सेवकों की गुणग्राहकता कब सीखेगी !!!

बिजनौर-आर्यसमाज का धर्म-प्रचार-उत्साह तथा कार्य

बिजनौर-आर्यसमाज ने ज़िले बिजनौर के मुख्य राज्यकेन्द्र (Head-quarter) का आर्यसमाज होने के अपने गौरव को बराबर स्थिर और अक्षुण्ण रक्खा है। अपने बाल्यकाल में ही उसका

धर्मप्रचार में उत्साह इतना अधिक था कि उस के प्रतिष्ठित और श्रद्धालु सदस्य, जिन में अधिकांश संख्या राजसेवकों की थी, प्रत्येक रविवार को शहर में नगरकीर्तन किया करते थे और उस समय जब कि वैतनिक वा व्यवसायी भजनीकों की सृष्टि अभी न हुई थी, स्वयं भजन बोलते हुए सारे नगर का भ्रमण करते थे। उस समय बिजनौर-आर्यसमाज का मासिक चन्दा २००) के लगभग था।

बिजनौर-आर्यसमाज-मन्दिर-निर्माण

प्रारम्भ में आर्यसमाज-मन्दिर न था: आर्यसमाज के अधिवेशन ताजपुर के रईस राजा जगतसिंह की कोठी (Institute), सेवहारे के रईस चौ० बसन्त सिंह जी के भवन तथा सेठ शिवराजसिंह जी और सेठ जौहरीमल जी रईस मोहम्मदपुर देवमल के मकानों में होते थे। परन्तु पीछे से इस समाजके उत्साही सदस्यों के उद्योग से वर्तमान समाज-मन्दिर का अहाता बड़े कमरे और बरामदे सहित १८९६ ई० में २२००) रु० में मोल लिया गया। आदि में सुप्रसिद्ध महात्मा मुन्शीराम जी, ज्येष्ठ शहीद पं० लेखराम जी आर्यमुसाफिर, मुंशी भगवानदास जी तथा सेठ शिवराजसिंह जी रईस मोहम्मदपुर देवमल इस मन्दिर के ट्रस्टी बनाए गए थे अर्थात् उन्हींके नाम उसकी भूमि क्रय की गई थी।

बिजनौर-आर्यसमाज मंदिर की इस भूमिकी खरीदारी में चौधरी चुन्नीसिंह आदि नहटौर के रईसों ने विशेष तौर

पर आर्थिक सहायता दी थी और समाजमन्दिर का कूप भी प्रशंसित चौधरी चुन्नीसिंह जी रईस ने ही अपने व्यय से बनवाया था। आर्यसमाज-मन्दिर का सिंहद्वार बा० हरलाल सिंह जी नगीना निवासी की भानजी सौभाग्यवती लीलावती के विवाह के स्मारक में, जो समाजमन्दिर में हुआ था, उक्त बाबूजी के ४००) के व्यय से बना था और कूप के पास का एक कमरा उन्हीं की भगिनी श्रीमती हरदेवी जी ने २००) की लागत से निर्माण कराया था।

अब बिजनौर के आर्यसमाज का मन्दिर इतना विशाल है कि क्षेत्रफल के विस्तार में उस की उपमा भारतभर में अन्यत्र मिलनी दुस्तर है और यदि बिजनौर-आर्यसमाज के पास धन की विपुलता हो तो उसमें उत्तम से उत्तम अभ्रङ्कष विशाल भवन बन सकते हैं।

कार्तिकी गङ्गास्नान-मेला-प्रचार
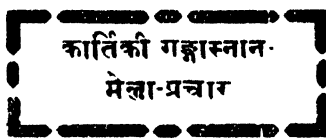
मौखिक धर्म-प्रचार में बिजनौर-आर्यसमाज प्रबल प्रयत्न करता रहा है। गंज दारानगर के गङ्गा के कार्तिकी-स्नान के भारी मेले में, जो इस ज़िले में हिन्दुओं का सबसे बड़ा मेला है, आर्यसमाज-बिजनौर सन् १८९६ ई० से लेकर प्रति वर्ष अपना विस्तृत शिविर (Camp) लगाकर बड़े समारोह से वैदिकधर्म का प्रचार करता रहा है और सहस्रों नर-नारियों के कर्ण-कुहरों में आर्य-समाज का सन्देश पहुँचाता रहा है।
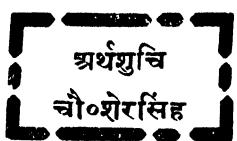
अर्थशुचि चौ० शेरसिंह

बिजनौर-आर्यसमाजको अपने सदस्यों में कई ऐसे उत्तम आर्य उत्पन्न करने का गौरव प्राप्त है, जिनका सदाचार और अर्थशौच परम प्रशंसनीय और सदा अनुकरणीय रहा है। उनमें नहटौरनिवासी चौ० शेरसिंह जी का सुगृहीत नाम और चरित विशेषतः वर्णनीय है, जो नीचे लिखा जाता है :—

चौ० शेरसिंह जी ने नहटौर उपनगर के एक कुलीन दानत्यागी (तगा) ब्राह्मण वंश में जन्म लेकर और पितृ-परम्परागत भूसंपत्ति (ज़मीदारी) के दायभागी होते हुए भी निर्धनता को अपनी सहचरी बनाया। विद्याध्ययन समाप्त कर के आप प्रारम्भ में ५ दिसम्बर सन् १८८५ ई० को १५) मासिक की वृत्ति पर बिजनौर की कलैकृरी (Collectoriate) विभाग में अहलमद पटवारी नियुक्त हुए। मुनसरिम-नकल होने पर उनको २०) मासिक वेतन मिलने लगा। तत्पश्चात् मार्च सन् १९२३ ई०तक अहलमद नीलाम और सरिश्तेदार आदि विविध पदों पर रहते हुए उन्होंने ८०) मासिक वेतन तक उन्नति प्राप्त कर के पैंशन ले ली। इस राजसेवा की अवधि में वे कई ऐसे पदों पर प्रतिष्ठित रहे कि जिनमें 'ऊपरी आमदनी' और 'हक़' के नाम से प्रसिद्ध मद से यदि वे चाहते तो सहस्रों रुपया जमा कर लेते और वर्तमान जनता के गिरे हुए अर्थ-शौच के आदर्श के अनुसार रिश्वत लेते हुए भी रिश्वतख़ोर न कहलाते हुए भलेमानस वा भद्रजन माने जाते और राजा और

प्रजा के प्रतिष्ठापात्र भी बने रहते। किन्तु चौ० शेरसिंह जी ने ऐसे भले मानस बने रहने के लिए आर्यसमाज में प्रवेश नहीं किया था। उन्होंने सच्चे आर्यत्व का अर्थ यही समझा कि अपने नियत वेतन के अतिरिक्ति 'ऊपरी आमदनी' के एक पैसे को भी मुर्दार माना और मोटा खाकर और मोटा पहिन कर अपने परिवार का निर्वाह बड़े संकोच (तङ्गी तुरसी) से करते रहे। परन्तु इस निस्पृहता के साथ ही उनका शिष्ट और भद्र व्यवहार इतना बढ़ा चढ़ा था कि अदालत में उनसे काम पड़ने वालों के काम उनके द्वारा सुगमतापूर्वक और अनायास ही होजाते थे और उनका यह सद्व्यवहार उन लोगों के आर्य-समाज में आकर्षण का कारण बनता था। इस मध्य में उनको किसी अपनी पैतृकसंपत्ति-सम्बन्धी एक पारिवारिक दीवानी अभियोग में फँसे रह कर सहस्रों रुपये व्यय करने पड़े और अपने पितृपर्य्यायागत आवासगृह से भी हाथ धोना पड़ा। चौ० शेरसिंह जी के इस अर्थशौच की जनता में यहाँ तक प्रतिष्ठा थी कि उक्त अभियोग में बड़े बड़े प्रसिद्ध वकीलों ने उनसे अपना पारिश्रमिक (मेहनताना) न लिया। परन्तु अँग्रेज़ी अदालतों के न्यायवितरण की महर्घता इतनी मारक है—उसमें नियमित अपव्यय भी इतना अधिक होता है—कि वह अभियोग-युद्ध के योद्धाओं का अन्तिम रक्तबिन्दु तक चूसे बिना नहीं छोड़ता और उसने चौ० शेरसिंह जी को भी बे-घरबार (कौपीन-शेष) बना दिया था। परन्तु उनकी वास्तविक धार्मिकता

था अर्थशौच-श्रद्धा का ही यह फल है कि इस समय वे मितव्य-यितापूर्वक अपना जीवन-निर्वाह करके नहटौर नगर में स्वयं अपने बनाये हुए निज नवभव्यभवन में निवास करते हैं और पेंशन पाने पर इस वृद्धावस्था में संसार के सब सुख—सुस्वास्थ्य, योग्य पुत्र पौत्रों की पारिवारिकता तथा चिन्ताराहित्य—उनको प्राप्त हैं। चौ० शेरसिंह जी सन् १६०१ ई० से १६०२ ई० तक बिजनौर-आर्यसमाज के प्रधानपद पर प्रतिष्ठित रहे। उस समय आर्यजनता में उनका इतना मान था कि एक बार बिजनौर-आर्यसमाज के वार्षिकोत्सव पर धनाऽभ्यर्थना (अपील) में उन्होंने अर्थकृच्छ्रतावश अपना शिरोवेष्ठन (सिर पर बाँधनेका दुपट्टा) मात्र ही दान दिया था। उपस्थित आर्य-जनता ने इस शिरोवेष्ठन की इतनी प्रतिष्ठा की कि वह तत्काल हाथों हाथ कई सौ रुपये को बिक गया। यह दृश्य विनीत लेखक का स्वयं अपनी आँखों देखा हुआ है। चौ० शेरसिंह जी का कथन है कि वे पर-स्त्री-स्पर्श के मानसिक पाप में भी कभी लिप्त नहीं हुए। यह उनकी मानसिक पवित्रता और विशुद्धता की चरम-सीमा कही जा सकती है।

निर्भीक मुंशी भगवान्दास

बिजनौर-आर्यसमाज के इतिहास में मुंशी भगवान्दास आर्य का नाम भी स्मरणीय है। आप निर्भीकता, स्पष्टवादिता और सत्यपरायणता की मूर्त्ति थे। आप बहुत वर्षों तक बिजनौर-आर्यसमाजके मंत्री रहे थे। बिजनौर-आर्यसमाज की उन्नति में आपने पर्याप्त भाग

लिया था। बिजनौर नगर में आपने कपड़े की दुकान खोलकर "एक मूल्य" कहने की चाल बिजनौर में सब से पहिले चलाई। उनके ऐसा करने का सङ्कल्प करने पर प्रथम लोगों को विश्वास न होता था कि बिना मोल तोल चुकाए "एक मूल्य" के कथनसे भी दुकानदारी चल सकती है। परन्तु श्री भगवान्-दास आर्य ने इसको कार्यतः प्रमाणित करके सफल दुकानदारी का दिग्दर्शन करा दिया और आजकल बिजनौर में अधिकांश दुकानदार उनका अनुकरण करते हैं। खेद है कि श्री भगवान दास जी ने बिजनौर के पास गङ्गा में स्नान करते हुए अपने प्राण गँवाए थे।

म० गौरीशङ्कर का परिवार

स्वयं बिजनौर नगर के निवासी एक ही परिवार का बिजनौर-आर्यसमाज की उन्नति में विशेष भाग रहा है और वह स्वर्गीय महाशय गौरीशङ्कर जी का परिवार है। इस परिवार के प्रवर-पुरुष डाकुर छदम्मीलाल जी अतिहीन अवस्था से उत्तरोत्तर अभ्युदय-लाभ करके उन्नति के शिखर पर पहुँचे थे। उनके ३ पुत्र डा० किशोरीलाल जी, महाशय गौरीशङ्करजी और बा० हरगुलालजी भी प्रतिष्ठित और यशस्वी हुए। म० गौरीशङ्कर ने आर्य समाज की सेवा में अपने जीवन का बहुत सा समय व्यतीत किया। वे काँगड़ी गुरुकुल विश्व विद्यालय की आदिम अवस्था में भूमि-प्राप्ति, भवननिर्माण और सामग्री संग्रह में पूर्ण उद्योग करते रहे और निःसन्तान रह

कर अपना नश्वर शरीर छोड़ते हुए उन्होंने बिजनौर-आर्यसमाज-मन्दिर की पूर्ववर्ती भूमि बिजनौर-आर्यसमाज को दान कर दी थी, जिस में सम्प्रति उद्यान-आरोपण का प्रबन्ध हो रहा है।

बाबू हर गुलाल जी के एक सुपुत्र डाक्टर ओम्प्रकाशजी काँगड़ी गुरुकुल विश्वविद्यालय के स्नातक तथा विद्यालङ्कार हैं और आजकल बिजनौर में अपना विशाल चिकित्सालय चला रहे हैं। इसी कुल के एक धार्मिक और श्रद्धालु व्यक्ति मुंशी मुरारिलाल भी थे। योगशास्त्र में उनको परम आस्था थी और वे प्राणायाम आदि यौगिक क्रियाओं के स्वयं भी अभ्यासी थे। उनका जीवन सरल और संयमसम्पन्न था और यह उसी का सुपरिणाम था कि उन्होंने ७२ वर्ष की दीर्घ आयु में चलते हाथ पैरों अपना नश्वर शरीर छोड़ा। निःसन्तान मरने के कारण उन्होंने अपने पीछे अपनी छोड़ी हुई सम्पत्ति के विषय में अपने इच्छापत्र (Will) द्वारा यह इच्छा प्रकट की थी कि उन की भूसम्पत्तिपर यावज्जीवन उनकी विधवा पुत्रवधू का अधिकार रहे और रोकड़ा सम्पत्ति में सेभी २५०) उक्त विधवा देवी को दिए जाने के पश्चात् और उनके अन्त्येष्टिसंस्कार के व्यय से जो कुछ बचे, उस से एक वैदिक पाठशाला उनके पूर्वमृत पुत्र चन्द्रभूषण के नाम से चलाई जाय और यदि वह धन पाठशाला के लिये अपर्याप्त हो तो उसको आर्यधर्मप्रचार कार्य में लगाया जाय। उनकी पुत्रवधू के देहान्त पर उन की
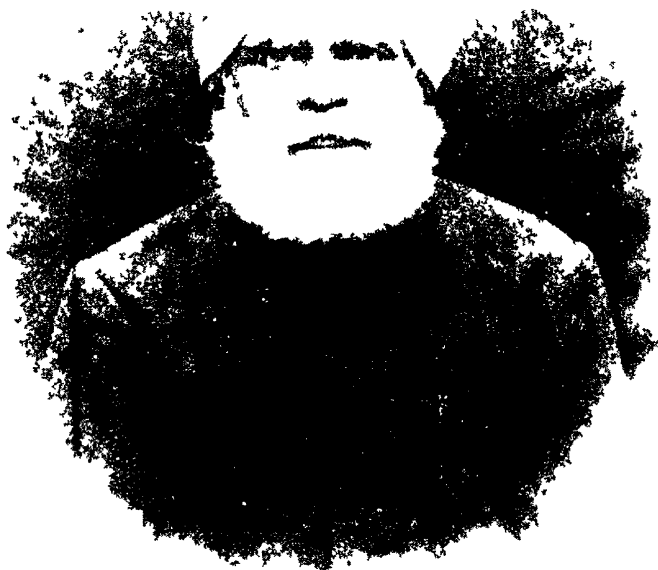
सुप्रसिद्ध चौ० शेरसिंहजी बिजनौर आर्य
समाज के भूतपूर्व प्रधान।

भूसम्पत्ति की आय भी उक्त पाठशाला वा धर्मप्रचार कार्य में व्यय की जावे।

सामाजिक सुधार और धर्मप्रचार में कष्टसहन

बिजनौर के आर्यसमाज ने अपनी आद्याऽवस्था में भोजन-स्पर्शाऽस्पर्श को मिथ्याभावना के परिहार आदि सामाजिक सुधारों में जो कष्ट सहन किए थे उनका संक्षिप्त वर्णन भी यहाँ प्रासङ्गिक ही है।

जब बिजनौर-आर्यसमाज ने विश्नोई-पन्थियों, छीपियों और भयाँर जुलाहों आदि को आर्यसमाज में प्रविष्ट किया था और उनके हाथ का छुआ हुआ भोजन करना और उनके यहां संस्कारों में सम्मिलित होना आरम्भ किया था तो बिजनौर की हिन्दु-जनता में तूम्बी में तूफ़ान उठ खड़ा हुआ था। उस समय पौराणिक हिन्दू आर्यसामाजिक जनोंसे इतनी घृणा करते थे कि दूकानों पर हलवाई तक उनके वस्त्रों के पल्ले से अपने पात्रों तक को बचाते थे। यह बात उपरिप्रशंसित चौधरी शेरसिंहजी भूतपूर्व प्रधान बिजनौर-आर्यसमाज के कथन से उद्धृत की गई है। सम्प्रति हिन्दुसमाजरूपी उष्ट्र (ऊँट) की सुधारभार-सहिष्णुता ने कितनी भारी उन्नति कर ली है कि अब वह हिन्दुओं की अतिदलित और परम नीच माने जाने वाली चमार आदि ज़ातों के साथ भोजनस्पर्श और भोजनपंक्ति में प्रवृत्त आर्यसामाजिकजनों से भोजन-व्यवहार में आनाकानी नहीं करता है और दाल रोटी आदि के

सार्वजनीन भोजनालयों में आर्यसामाजिकों का अप्रतिहत प्रवेश प्रचलित है। काल की महिमा की बलिहारी है। "कालः सर्वस्य कारणम्" की उक्ति सर्वत्र विजय पारही है।

बिजनौर-आर्यसमाज के धर्मसभासे शास्त्रार्थ

सम्प्रति वह समय भी इतिहास की स्मृतिमात्र में शेष-प्राय रह गया है जब कि एक ही अपौरुषेय सनातन वेद में प्रामाण्यबुद्धि रखने वाले दो सम्प्रदाय आर्यसमाजी और पौराणिक उपासनाप्रकार और सामाजिक व्यवहार को लक्ष्य कर के वाग्युद्ध में प्रति दिन खड्गहस्त रहते थे और वह वाग्वितण्डा "शास्त्रार्थ" के सम्मान्य नाम से प्रसिद्ध था। कभी वह "शास्त्रार्थ" कहला कर भी "शस्त्रार्थ" में परिणत हो जाता था। आर्यसमाज बिजनौर को भी ऐसे दो शास्त्रार्थों का साम्मुख्य करना पड़ा था। आर्यसमाज बिजनौर का पहिला शास्त्रार्थ जनवरी सन् १८९७ ई० में श्री शिवाश्रम स्वामी पौराणिक संन्यासी से हुआ था। उक्त स्वामी जी को संस्कृतवाणी में असंस्कृत रहते हुए भी संस्कृतज्ञता का परम अभिमान था। यह उनके अनेक अशुद्धिपूर्ण संस्कृत पत्रों से, जो मेरठ के वेद-प्रकाश के संवत् १९५५ वि० वर्ष १ मास १ के फ़ाइल में सुरक्षित हैं, पूर्णतः प्रमाणित होता है। बिजनौर आर्यसमाज की ओर से सामवेद आदि के भाष्यकार स्वर्गीय पण्डित तुलसीराम जो स्वामी मेरठ निवासी ने सुललित संस्कृत में उक्त स्वामी जी के प्रश्नोंके

सारगर्भित उत्तर दिए थे। कुछ पत्र-व्यवहार के पश्चात् १७ जनवरी सन् १८९७ ई० को दोनों पक्ष विधवाविवाहप्रचारक सनातनी सोती (श्रोत्रिय) शंकरलाल जी रईस बिजनौर के गृह पर शास्त्रार्थ के लिए एकत्रित हुए। वहाँ उक्त स्वामी शिवाश्रम शास्त्रार्थ में मध्यस्थ नियत करने के लिए आग्रह करते रहे, जिस का निबटारा न आज तक कहीं हुआ और न आगे होने की आशा है। फिर धर्मसभा की ओर के पं० देवदत्त शास्त्री से पं० तुलसीराम के प्रश्नोत्तर उभयपक्ष के प्रामाण्याप्रामाण्यग्रन्थों और षड्दर्शनोंकी पदार्थ-संख्या विषय पर होते रहे, जिनमें पं० देवदत्तजी ने पदार्थोंकी संख्या अशुद्ध बतलाई। स्वामी शिवाश्रम भी बीच में बोलने लगे और बितण्डा बढ़ता गया। सायङ्काल होगया। श्रोत्रिय शङ्करलाल जी ने खड़े होकर सुना दिया कि महाशयो, मध्यस्थ न मिलने से शास्त्रार्थ नहीं हो सकता। आप अपने अपने घर जाइए। इस वादविवाद का बिजनौर की जनता पर बहुत प्रभाव पड़ा और बिजनौर-आर्यसमाज में १७ सभासद् बढ़े। इस समय महाशय भगवानदास जी बिजनौर-आर्यसमाज के मन्त्री थे।

बिजनौर-आर्यसमाज और बिजनौर-धर्मसभाका द्वितीय शास्त्रार्थ सन् १९०१ ई० के ग्रीष्म में २९—३० मार्च को 'प्रायश्चित्त' विषय पर चित्रगुप्त-मन्दिर के समीप हुआ था। शास्त्रार्थसभा के प्रबन्धकर्त्ता सभापति लाला रामगुलाम जी, प्रधान-बिजनौर-धर्मसभा थे। आर्यसमाज की ओरसे स्वामी

दर्शनानन्द जी तथा आगरा निवासी पं० भीमसेन जी और धर्मसभा की ओर से इटावा निवासी भूतपूर्व आर्य पं० भीमसेन जी और मुरादाबाद निवासी पण्डित ज्वालाप्रसाद जी आदि सुशोभित थे। इटावा निवासी पं० भीमसेन जी बोलते न थे। केवल प्रमाण आदि निकाल कर देने की सहायता दे रहे थे। शास्त्रार्थ लिखित और मौखिक दोनों प्रकार से हुआ था। आर्य्यसमाज की ओर से काश्मीराधिपति महाराज रणवीरसिंह-कारित 'रणवीर-रत्नाकर' नामक प्रसिद्ध प्रायश्चित्त-ग्रन्थ का वह प्रमाणसंग्रह प्रस्तुत किया गया था, जो उक्त महाराज ने सहस्रों रुपये व्यय करके वाराणसी की विद्वन्मण्डली से प्रायश्चित्ति-व्यवस्था के रूप में कराया था, जिसमें प्रत्येक प्रकार के प्रायश्चित्तों का विधान है तथा उनके द्वारा धर्मभ्रष्ट मुसलमान और ईसाई आदि अति सुगमता से शुद्ध होकर वैदिक धर्म में वापिस आ सकते हैं। किन्तु उस समय से अब तक इस विषय में हिन्दुमनोवृत्ति में आकाश पाताल का अन्तर आचुका है। अब पौराणिक-पण्डित जन्मजात मुसलमान और ईसाइयों तक के वैदिकधर्म-प्रवेश के पक्षपाती होगए हैं और इस विषय पर शास्त्रार्थ अब केवल इतिहास का विषय रह गया है।

सहजानन्द-जयकृष्ण-दास-भारतसिंह-प्रयत्नकाल की विशेषता

यहाँ तक प्रायः सहजानन्द-जयकृष्णदास-भारतसिंह-प्रयत्नकाल के प्रचार और आन्दोलन का वर्णन समाप्त होता है। इस प्रचार-प्रयत्न-काल की यह विशेषता थी कि उसमें प्रचार का प्रयत्न प्रायः आर्य पुरुषों के स्वयं अपने ही व्यक्तित्व पर निर्भर था। उस काल में न इतने वैतनिक उपदेशकों व प्रचारकों की प्रचुरता थी, न व्यवसायी भजनमण्डलियों की सृष्टि हुई थी। उस समय वैदिकधर्म का सन्देश महर्षि दयानन्दकृत सत्यार्थप्रकाश आदि ग्रन्थों और अन्य आर्य विद्वानों के निबन्धों से लेखबद्ध प्रचार द्वारा, अवैतनिक आर्य विद्वानों के व्याख्यानों और संभाषणों से मौखिक प्रचार द्वारा और आर्यसमाज के सदस्यों के वैयक्तिक व्यवहार तथा सदाचार के प्रभाव द्वारा आर्यजनता तक पहुँचता था। तब आजकल की सी दशा न थी कि हार-मोनियम, ढोलक और भजनों के बिना जनता एकत्र ही न होती हो और आर्यसमाजों के वार्षिकोत्सव ही न हो सकते हों। उस समय के श्रोता इस कर्णरस के लोलुप न थे और बिना किसी प्रलोभन के आर्य विद्वानों के व्याख्यानों को बड़ी रुचि से सुनते थे। साक्षर जनों में धर्मजिज्ञासा भी इतनी प्रबल थी कि वे धार्मिक साहित्य की खोज में रहते थे और इसी इतिहास में आगे कुछ वर्णन ऐसे आएँगे, जहाँ कई लोगों ने

कोई व्याख्यान सुने बिना केवल आर्यसाहित्य के पाठ से ही आर्यधर्म का सन्देश पाया था।

उस काल के आर्य महाशयों का सदाचार भी आदरणीय आदर्श समझा जाता था। न्यायालयों में किसी आर्य का साक्ष्य (गवाही) उस घटना को प्रमाणित करने के लिये प्रामाण्य माना जाता था और जनता का दृढ़ विश्वास था कि आर्य सत्यवादी और निष्कपट होते हैं। एक प्रकार से उसको आर्य समाज का आद्य स्वर्णयुग वा 'सतयुग' कह सकते हैं।

बिजनौर-आर्यसमाज द्वारा विद्याप्रचार

विद्याप्रचार और विद्यावैभव के विचार से भी बिजनौर का आर्यसमाज अग्रगण्य कहा जा सकता है। कृपाराम-प्रयत्नकाल में बिजनौर-आर्यसमाजमन्दिर मे एक संस्कृत-पाठशाला सन् १९००ई० में स्थापित होकर बहुत दिनों तक चलती रहीथी। सन् १९१३ ई० से १९१८ ई० तक एक "दयानन्द एँग्लोवैदिक स्कूल" भी उस में स्थापित रहा था। इंग्लैंड होकर लौटे हुए मास्टर बलवन्तसिंह जी उसके हेड मास्टर थे। इस स्कूल के भवन के लिये ५००) श्रीमती रानी फूलकुमारी जी रईस धामपुर ने दान दिए थे, जिससे एक कमरा उनके स्मारक में बनाया गया, जिस में आजकल आगे वर्णित 'श्री मद्दयानन्द वैदिक पाठशाला' का कार्य होता है। आजकल भी इस समाजमंदिर में एक छोटी सी आर्यभाषा-पाठशाला विद्यमान है, जिसमें बिजनौर

को स्वजन्म का गौरव प्रदान करने वाले सुप्रसिद्ध डाक्टर तेज बहादुर सप्रू की उदारतासे पलने वाले कई दलित समुदाय के अनाथ बालक शिक्षा पा रहे हैं।

बिजनौर-आर्यसमाज प्रारम्भ से ही अपने सदस्यों की सन्तानों और विद्यार्थियों को विद्यावृद्धिमें उत्साह प्रदान करता रहा है।

प्रतिष्ठित आर्य
राय ज्वालाप्रसाद जी
चीफ़ इञ्जीनियर

उसने एक योग्य विद्यार्थी मंडावर निवासी महाशय ज्वालाप्रसाद को मिडल परीक्षा में सर्वोच्च रहने पर पदक और पारितोषिक प्रदान किया था और उसके इस विद्याप्रोत्साहन का ऐसा सुपरिणाम निकला कि उस समय का विद्यार्थी ज्वालाप्रसाद आज राय ज्वालाप्रसाद चीफ़ इञ्जीनियर नहर विभाग के परम प्रतिष्ठित रूप में विराजमान हे। राय ज्वालाप्रसाद ने, न केवल अब तक भारतीयों में अनुपलब्धप्राय चीफ़ इञ्जीनियर का सर्वोच्चपद प्राप्त किया है, प्रत्युत धर्मके लिये त्याग, तितिक्षा और परोपकारवृत्ति में भी वे अद्वितीय उदाहरण दिखलाते रहे हैं। आप सन् १९२४ ई० में बिजनौरआर्यसमाज के प्रतिष्ठित सभासद् थे। पटियाला राज्य में, जब वहाँ स्थित आर्यों की अग्निपरीक्षा हुई थी—उन पर केवल उनके धर्मविश्वास वा आर्य होने के लिए राजविद्रोह का भारी अभियोग चलाया गया

और भारतीय फ़ौजदारी क़ानून के पंडितपुंगवों की पूर्ण सहायता ली गई—तो धर्मवेदी पर बलि दिए जाने के लिए इन प्रस्तुत पुरुषों की पंक्ति में राय ज्वालाप्रसाद भी सुशोभित थे। अन्तमें इन धर्म के पतङ्गों की धर्म पर अटल श्रद्धा इनके आड़े आई और पटियाला-राज्य को उन पर से वह अभियोग उठा लेना पड़ा। राय ज्वालाप्रसाद उस राज्य के उच्च इञ्जीनियर के पदको त्याग कर चले आए और हिन्दु-यूनि-वर्सिटी के भव्य-भवन बनवाने का कार्य करते रहे। राय ज्वालाप्रसाद की दानशीलता भी प्रशंसनीय रही है। उन्होंने अपने वंश के राजवंशीय वैश्यों के बीसियों विद्यार्थियों को विद्यार्थिवृत्ति-प्रदान द्वारा विद्यासम्पन्न बनाया है और उनको नौकरियाँ दिला कर आजीविकोपार्जन में समर्थ कर दिया है। बिजनौर-आर्यसमाज की यज्ञशाला भी उनकी उदारता और वदान्यता का परिचय दे रही है। उसके निर्माण में उन्होंने अपने स्वर्गीय भ्राता बाबू गोकुल प्रसाद जी B. A., LL. B. की स्मृति में ५००) सहायता दी थी। वैदिकधर्म के ज्येष्ठ शहीद पं० लेखराम जी आर्य मुसाफ़िर के बलिदान पर उनका स्मारक स्थापन करने की प्रेरणा के लिए जो महती सभा बिजनौर में हुई थी, उसके सभापति के आसन को राय ज्वाला-प्रसाद जी ने ही विभूषित किया था।

बिजनौर आर्य समाज के
प्रधान बा० जगन्नाथ शरण जी B.A.LL.B.

राय ज्वाला प्रसाद जी चीफ़ इंजीनियर U. P. Govt.

बिजनौर आर्य समाज में दलित नवप्रविष्ट आर्य सहभोज ।

विद्याप्रेमी पं० जयनारायण

बिजनौरआर्यसमाज के विद्या-प्रेमी सभासदों में पण्डित जय-नारायणजी का सुनाम भी उल्ले-खनीय है। आप कई वर्ष तक बिजनौर आर्यसमाज के मन्त्री रहे थे और गत वर्षों से कोषाध्यक्ष का कार्य कर रहे हैं। आप ने अपनी स्वल्प वृत्ति में अपने भारी कुटुम्ब का निर्वाह करते हुए अपने लघु भ्राता पण्डित शिवनारायण शुक्ल को उच्च शिक्षा दिला कर B. A., LL. B. की डिग्री प्राप्त कराई थी और उक्त शुक्ल जी आर्य्यसमाज के प्रकाशमान तारे बने हैं। आप वृन्दावन गुरुकुल के मुख्याधिष्ठाता पद को अलंकृत करते रहे थे। पण्डित जयनारायणजी ने अपनी धर्मपत्नी को भी स्वयं शिक्षा देकर और नार्मल पास कराकर बिजनौर ज़िला परिषत् (District Board) कन्या पाठशाला की मुख्या-ध्यापिका बना दिया। अपनी पुत्री श्रीमती चन्द्रावती जी को आङ्गल भाषा की सर्वोच्च उपाधि परीक्षा दिलाकर और M.A. बनाकर तो आपने अपने अनुपमेय पुत्रीवात्सल्य और विद्या-प्रेम का अपूर्व परिचय दिया है। श्रीमती चन्द्रावती जी M.A. का विवाह जाति पाँति का बन्धन तोड़कर कांगड़ी गुरुकुल विश्वविद्यालय के तुलनात्मक-धर्मविज्ञान के महोपाध्याय पं० सत्यव्रत जी सिद्धान्तालङ्कार के साथ हुआ था। श्रीमती चन्द्रावती जी के पिता पण्डित जयनारायण जी कट्टर कान्य-कुब्ज ब्राह्मणकुल में, जिस के लिए "८ कन्नोजिए ९ चूल्हे"

की कहावत प्रसिद्ध है और जिस में विवाहबन्धन को बड़ी भारी अड़चनें हैं, जन्मे थे और प्रशंसित पण्डित सत्यव्रत जी सारस्वत ब्राह्मण वंश के अंकुर हैं। उनको श्रीमती चन्द्रावती जी का पाणिग्रहण कराकर पण्डित जयनारायण जी और उन के परिवार ने असीम साहस दिखलाया और जाति पांति के विध्वंस का उत्तम उदाहरण उपस्थित किया। श्रीमती चन्द्रावती जी आजकल कन्यागुरुकुल देहरादून में विद्या-प्रदान द्वारा अपनी जाति की सेवा कर रही हैं। वर्तमान आर्य्यसम्मेलन से सम्बद्ध आर्यमहिला-सम्मेलन की संयोजिका भी आप ही हैं।

बिजनौर आर्यसमाज के अन्य उन्नायक महाशय

आर्यसमाज बिजनौर के अन्य उन्नायक महाशयों में नांगल निवासी पण्डित द्वारिका-प्रसाद जी महाशय रामस्वरूप जी भूतपूर्व नायब महाफ़िज़ दफ़्तर, म० श्यामलाल जी, बा० जोयालाल जी, पण्डित बाबूराम जी मुख़्तार, पण्डित रामस्वरूप जी वकील, बाबू ब्रजनन्दन शरण जी B.A., LL.B., मुन्शी भोलानाथ जी (उपनाम राजा जी), म० रामस्वरूप जी अमीन बटवारा, स्वर्गीय बा० दयाशङ्कर जी सेक्रेटरी डिस्ट्रिक्ट बोर्ड बिजनौर, स्वर्गीय मु० हरसहाय जी माथुर खुरसन्द पेंशनर पेशकार तथा बा० जगन्नाथ शरण जी B. A., LL. B. आदि के नाम भी विशेषतः उल्लेख्य हैं।

इनमें से पं० द्वारिकाप्रसाद जी ने कृपाराम प्रयत्नकाल में बिजनौरआर्यसमाज की ओर से पण्डित वासुदेव आदि की वैतनिक भजनमण्डली की नियुक्ति तथा बिजनौरसमाज-मन्दिर में पाठशाला की स्थापना में मुख्य योग देकर गान वा भजन द्वारा आर्य-धर्मप्रचार-प्रकार के प्रसार में सहायता प्रदान की थी। अपने समयके आप प्रबल उत्साही और दबंग आर्य माने जाते थे। किन्तु पीछे से आप को आर्यसमाज के कई सिद्धान्तों में अश्रद्धा हो गई और आप अपने स्वतन्त्र-विचारसम्पन्न सर्वाङ्ग–धर्म का प्रचार करने लगे। आपने सर्वाङ्गाचार्य्य की उपाधि धारण करके सर्वाङ्गधर्म नामक कोई पुस्तक भी प्रकाशित कराई थी।

म० रामस्वरूप जी ने मुमूर्षु बिजनौर मण्डलार्योप-प्रतिनिधि सभाके पुनरुज्जीवनके लिए प्रबल उद्योग किया था।

मुंशी हरसहाय जी माथुर ख़ुरसन्द पेंशनर पेशकार उर्दू भाषा के सुकवि थे और उनकी महर्षि दयानन्द की स्तुति में एक कविता, जो उन्होंने गत श्रीमद्दयानन्दजन्मशताब्दी मथुरा के महोत्सव में पढ़कर सुनाई थी, बहुत पसन्द की गई थी। उक्त कविता उक्त जन्मशताब्दी वृत्तान्त में पृष्ठ ८५ पर प्रकाशित हुई है।

महाशय रामस्वरूप जी अमीन बटवारा चित्रकला में बड़े निपुण हैं। आपने महर्षि दयानन्द तथा ज्येष्ठ शहीद पण्डित लेखराम जी आर्यमुसाफ़िर के लेखनीलिखित सुन्दर

चित्र खींचे थे, जो सम्प्रति बिजनौर-आर्यसमाज के विशाल हॉल की शोभा बढ़ा रहे हैं और प्रत्येक वर्ष बिजनौर आर्य-समाज के वार्षिकोत्सव को भी विभूषित करते हैं। आप वर्तमान आर्यसम्मेलन के अलंकृति-विभाग के संयोजक हैं।

अन्य महाशय भी समय २ पर बिजनौर आर्यसमाज के पदाधिकारी वा स्तम्भ रहे हैं।

बा० जगन्नाथशरण जी
B. A. LL. B

बा० जगन्नाथशरण जी B. A., LL. B. बिजनौर-आर्यसमाज के मुख्य स्तम्भ वा बिजनौर आर्यसमाज की डगमगाती हुई नौकाके मुख्य कर्णधार हैं। आप १८ नवम्बर १९१८ ई० में बिजनौर आर्यसमाज के सदस्य बने थे, सन् १९१९ ई० में आप उसके मन्त्री तथा सन् १९२० ई० में प्रधान चुने गये और तब से सन् १९२१ ई० में पण्डित रामस्वरूप जी की प्रधानता को छोड़ कर आप अब तक बराबर बिजनौर आर्यसमाज के प्रधानपद की शोभा-वृद्धि कर रहे हैं। आपके आर्यधर्म-प्रचार के उद्योग बिजनौर-मण्डलार्योप-प्रतिनिधिसभाप्रयत्नकाल के अन्तर्गत हैं और आप उक्त उपप्रतिनिधिसभा के प्रमुख पुनरुद्धारक तथा प्रधान हैं। इसलिए आप के तद्विषयक कार्यकलाप का सविस्तर वर्णन उक्तसभा के वृत्तान्त में अपने स्थान पर ही आएगा। बिजनौर-आर्यसमाज ने आपके प्रधानत्वकाल में जो उन्नति की है, वह संक्षेपतः प्रसङ्गवशात् यहां ही वर्णनीय

है। आपकी प्रधानता में बिजनौर-आर्यसमाज में कई जन्म के मुसलमान, ईसाइयों की शुद्धियाँ और दलितों की बहुसंख्या का वैदिक धर्मप्रवेश हुआ, जिनमें हेमपुर निवासी जन्म के मुसलमान शेख़ रहीमबख़्श की शुद्धि सन् १९२३ ई० में बड़े महत्व की हुई। उक्त शुद्धि में आर्योपप्रतिनिधि सभा के उपदेशक परमोत्साही वाग्मिवर पं० विहारीलाल जी काव्यतीर्थ का भी प्रधान प्रयत्न था। शेख़ रहीमबख़्श और उनकी धर्मपत्नी के अपने घर से शुद्धि के लिए बिजनौर आने में उन के पिता आदि पारिवारिक जनों न बड़ा विघ्न डाला और वे उन के रोकने में डण्डाडंडि और मुष्टामुष्टि पर उतर आए। पर श्रद्धालु धर्म-पिपासु रहीमबख़्श उनके प्रहार पर प्रहार सहते हुए भी आने से न रुका। इस मारपीट का अभियोग, दण्डविधायक न्यायालय (Criminal Court) में चिरकाल तक चलता रहा और प्रशंसित बा० जगन्नाथशरण जी अपने वकालत व्यवसाय की बहुत हानि सहकर भी अपना अमूल्य समय देते हुए उसकी पैरवी करते रहे। बिजनौरसमाजमन्दिर में उक्त शुद्धि उक्त समाजके सन् १९२३ ई० के वार्षिकोत्सव पर असीम समारोह से हुई और शेख़ रहीमबख़्श गायत्रीमन्त्र के उच्चारण पूर्वक महाशय देवदत्त बन गये। ये महाशय अभी तक दृढ़ आर्य प्रमाणित हुए हैं और बरेली आर्यसमाज के विद्याविभाग में दलितों को विद्यादान करते हुए आर्यधर्म की सेवा कर रहे हैं।

बिजनौर आर्यसमाज द्वारा दलितोद्धार विषय में भी चमार कहलाने वाले दलित समुदाय का वैदिक-धर्मप्रवेश और उनके साथ एप्रिल सन् १६२८ ई० का सहभोज भी बिजनौरआर्यसमाज की कर्मवीरता में गौरव की वस्तु है। उक्त सहभोज का चित्र, जिसमें कुलक्रमागताभिमानी प्रत्येक ज़ात के प्रतिष्ठित प्रतिनिधि सम्मिलित और सुशोभित हैं. यथास्थान सन्निविष्ट है।

बा० जगन्नाथशरण जी के ही प्रधानत्वकाल में बिजनौर आर्यसमाजमन्दिर की वर्तमान यज्ञशाला, उक्त मंदिर के मुख्य-द्वारसे दक्षिणके कमरे और स्त्रीसमाज भवनका निर्माण हुआहै।

यज्ञशाला

जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है इस यज्ञशालानिर्माण की दानसूची में सबसे बड़ी राशि राय ज्वालाप्रसाद जी चीफ़-इञ्जीनियर के ५००) की है, जो आपने अपने भ्राता स्वर्गीय बाबू गोकुलप्रसाद जी की स्मृति में दी थी। उस में ४००) बा० गोबिन्द स्वरूप जी B. A. वकील ने अपने स्वर्गीय पिता श्री रामस्वरूप जी के स्मारक में दिए थे। ३४०) महा० मिट्ठनलाल जी खन्नाका अपने मित्र स्वर्गीय बा० गोकुलप्रसाद जी B. A., LL. B. वकील की स्मृति में दान है तथा २५०) की राशि बिजनौर निवासी अंग्रेज़ी कानून के प्रसिद्ध विद्वान् तथा संयुक्त प्रान्तीय गवर्न्मेंन्ट के भूतपूर्व मन्त्री डाक्टर तेजबहादुर सप्रू की उदारता का परिचय दे रही है। यह

यज्ञशाला दो सहस्र रुपये की लागत से सं० १९८३ वि० (सन् १९२६ ई०=दयानन्दाब्द १०१) में बनी है। इस यज्ञशाला के कल्पनाचित्र (नक्शा) आदि की तैयारी और निर्माणसामग्री के संग्रह में स्वर्गीय बा० दयाशङ्करजी सेक्रेटरी डिस्ट्रिक्ट बोर्ड बिजनौर ने बड़ा परिश्रम किया था। आप के स्वयम् अपने रिवॉल्वर के अकस्मात् चल जाने से आप की अकाल मृत्यु की दुर्घटना अतिशोचनीय हुई थी और उसके रूप में बिजनौरआर्यसमाज अपनी क्षति को कभी न भूलेगा।
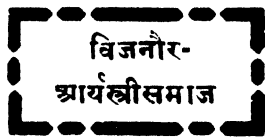
बिजनौर-आर्यस्त्रीसमाज

बिजनौर का आर्यस्त्रीसमाज भी एक जीती जागती शक्ति है। इसके साप्ताहिक अधिवेशनों में पूर्ण उत्साह का दृश्य दृष्टिगोचर होता है और इसका वार्षिकोत्सव भी बिजनौर आर्यसमाज के वार्षिकोत्सव से अगले दिन प्रतिवर्ष बड़े समारोह से मनाया जाता है। पं० जयनारायण जी की धर्मपत्नी श्रीमती भगवान्देवी जी मुख्याध्यापिका बिजनौर-डिस्ट्रिक्टबोर्ड कन्यापाठशाला उसके प्रधानपद की शोभा हैं। आप उक्त स्त्री-समाज को मनोयोग और कर्मण्यतापूर्वक चला रही हैं। बिजनौर समाजमन्दिर में उक्त स्त्री-समाज का जो नवीन भवन एक सहस्र रुपए की लागत से निर्मित हुआ है, उसके लिए ज़िले के भिन्न भिन्न उपनगरों में जाकर आपने भिक्षा द्वारा धनसंग्रह किया था। उक्त भवन के निर्माण का श्रेय बहुत कुछ आपको ही है।

मोहम्मदपुर-देवमल-आर्यसमाज

सहजानन्द--जयकृष्णदास -भारतसिंह--प्रयत्नकाल में स्वामी सहजानन्द जी के धर्म-प्रचारोद्योग का द्वितीय केन्द्र बिजनौर के पश्चात् मोहम्मदपुर देवमल ग्राम बना था। प्रायः दो सहस्र मनुष्यों की बसीकृत का यह ग्राम इस ज़िले के प्राचीनतम उपनगर मंडावर से दक्षिण-पश्चिम को २ मील, बिजनौर से छः मील, मंडावर से गंगा के रावली घाट को जाने वाली सड़क पैर, २६´ २७′ उत्तरीय अक्षांश और ७८ ८′ पूर्वीय देशान्तर पर स्थित है। इस ग्रामकी अधिकांश जनता विश्नोई पन्थावलम्बी थी। विश्नोई ही यहाँ के मुख्य ज़मींदार और समृद्धिशाली सेठ साहूकार हैं।

विश्नोई पन्थ

यहाँ विश्नोई पन्थ और उसके संस्थापन का कुछ वृत्तान्त देना अनुचित न होगा, क्योंकि आर्य्यसमाज के आन्दोलन का इस पन्थ के अनुयायियों पर प्रबल परिवर्तन-कारी भारी प्रभाव पड़ा है।

इस पन्थ के प्रवर्तक श्री झाम्ब जी ने देहली के बहलोल लोदी के समय सम्वत् १५०८ वि० (सन् १४५१ ई०) में भाद्रपद वदि अष्टमी सोमवार के दिन, जोधपुर (मारवाड़) राज्यान्तर्गत पिपासर ग्राम में, जो नागौर से १६ कोस उत्तर को है, परमार गोत्र के राजपूत कुल में, सुजन्म ग्रहण किया था। मुसलमानी राज्य में हिन्दुओं और उनके धर्म कर्म की

जो दुर्दशा थी, वह इतिहासज्ञों को भले प्रकार ज्ञात है। उस समय मुसलमानों की परमतासहिष्णु खड्ग प्रतिक्षण उन के सिर पर झूलती रहती थी। तब हिन्दु होना ही एक प्रकार का अपराध था। कोई हिन्दु अपने धर्म कर्म का निर्वाह प्रगट रूप से नहीं कर सकता था। उनको जज़िया नामक कर विधर्मी होने के दण्डस्वरूप देना पड़ता था। उनको अपने मन्दिर आदि धर्मस्थानों की सदा कुशल मनानी पड़ती थी। जब कभी किसी विशाल मसजिद के बनाने की आवश्यकता होती थी, तो उस के लिए निर्माणसामग्री (मलबा) अनेक मन्दिर तोड़ कर संग्रह की जाती थी। ऐसे धर्म-विप्लवकाल में जिन महात्माओं ने वैदिकधर्म के तत्वों वा मुख्य सिद्धान्तों की येन केन प्रकारेण रक्षा की, वे आर्यजाति और आर्य-संस्कृति के अभिमानियों के लिए परम पूजनीय और बन्दनीय हैं। ये महापुरुषगण खुल्लमखुल्ला तो हिन्दु धर्म की प्रत्येक प्रथा और क्रिया का समर्थन कर न सकते थे, क्योंकि हिन्दुसंस्कृति और हिन्दुधर्म का समर्थक प्रसिद्ध होने की अवस्था में उन के नश्वर शरीरोंकी विद्यमानता को भारी सङ्कट का सामना था। इसलिए उनको नीतिपूर्वक यह कार्य करना होता था। इसका उन्होंने यह उपाय निकाला था कि अहिंसा, सत्य तथा शौच आदि सनातन धर्म के आधारभूत सिद्धान्तों को स्थिर रखते हुए हिन्दु और मुसलमानों के कुछ व्यवहारों को मिला जुला कर कई नवीन पन्थों का आविष्कार और प्रचार किया था।

श्री गुरुनानकजी, श्री कबीरजी तथा श्रीझाम्बजी इसी श्रेणी के पन्थप्रवर्तक महात्मा थे। उनके अनुयायियों में हिन्दु और मुसलमान दोनों समुदायों के मनुष्य समादर भाव से सम्मिलित होते थे। मुसलमानों को उनपर सनातन धर्म की संरक्षा का सन्देह न होता था, प्रत्युत वे उनको अपना गुरु (पीर) मानते थे और कभी कभी हिन्दु और मुसलमानों में उनके हिन्दु वा मुसलमान होने के विषय पर विवाद भी ठन जाता था।

श्री कबीरजी के देहान्त पर उनके शव को लक्ष्य कर के, ऐसा ही विवाद उपस्थित हुआ था। हिन्दु उनके शव को हिन्दु के नाते दाह करना और मुसलमान उनको मुसलमान मानकर उसको भू-समाधि देना चाहते थे।

श्री गुरु नानक जी के शिष्यों (सिक्खों) में मर्दाना आदि अनेक मुसलमान सम्मिलित थे। श्री झाम्बजी ने भी हिन्दु-मुसलमानी प्रथाओं और क्रियाओं को मिलाजुला स्वरूप देकर बिश्नोई पन्थ चलाया था। इस पन्थ में, जहाँ अहिंसा-शौच आदि वैदिकधर्म के सनातन सिद्धान्तों को पूर्णतः सुरक्षित रक्खा गया था, वहां मुसलमानों के मुर्दा दबाने और मुसलमानी नाम रखने आदि की कुछ प्रथाएँ भी सम्मिलित कर ली गई थीं। इसलिए कट्टर हिन्दुजनता उनको हिन्दुओं से पृथक् समुदाय और मुसलमान उनको अपना सहगामी संप्रदाय समझते थे। इस पन्थ की यह विशेषता थी कि

यद्यपि वे अपने मुर्दों को गाड़ते थे—नगीना आदि कई स्थानों में मुसलमानों से पृथक् बिश्नोइयों के भूसमाधि-स्थान (क़ब्रिस्तान) अब तक विद्यमान हैं—तथा शेख़ रोशन और शेख़ पन्ना प्रभृति अपने मुसलमानी नाम रखते थे, तथापि आहार व्यवहार में हिन्दु और मुसलमान दोनों से सर्वथा पृथक् रहते थे। वे न हिन्दुओं के हाथ से और न मुसलमानों से स्पृष्ट भोजन ग्रहण करते थे। हिंसा को सर्वदा वर्जित मानते हुए वे मांस-मद्य सेवन कभी न करते थे। हिन्दु भी उनका छुआ हुआ भोजन वा जल ग्रहण न करते थे। इस विश्नोई पन्थ में हिन्दुओं की प्रायः सभी ज़ातों के लोग सम्मिलित हैं। परन्तु यह विश्नोई पन्थ श्री रामानुजाचार्य तथा श्री रामानन्द के वैष्णव सम्प्रदाय से सर्वथा भिन्न है। बिजनौर ज़िले में इस विश्नोई पंथ के अनुयायियों की पर्याप्त संख्या नगीना आदि कई स्थानों में बसी हुई है। मोहम्मदपुर देवमल में उन की मुख्य बसीकत है और वे अधिकांश बनिये विश्नोई हैं। वहाँ इस सम्प्रदायमें सेठ जौहरीमल प्रमुख और प्रभावशाली पुरुष थे। उनका कुल अब भी प्रतिष्ठित है।

स्वामी सहजानन्द ने मोहम्मदपुर देवमल पहुँच कर सेठ जौहरीमल जी के कुल को बहुत से विश्नोइयों के साथ आर्यसमाज में दीक्षित किया और उनको सहस्रों वर्षों से परित्यक्त यज्ञोपवीत धारण करा कर सर्व श्रेष्ठ सावित्री का उच्चारण सिखलाया। उस समय विश्नोइयों को यज्ञोपवीत

देने तथा उनके हाथसे भोजन व्यवहार आरंभ करने पर हिंदु-जनता में बड़ा कोलाहल मचा था, जैसा कि बिजनौर-आर्य-समाज के वर्णन में उसके पुराने प्रतिष्ठत सभासद् और भूतपूर्व प्रधान चौ० शेरसिंह जी और नगीना आर्यसमाज के वर्णन में उसके प्रधान कार्यकर्ता पण्डित हरिशङ्कर जी दीक्षित के कथन के आधार पर उल्लिखित है और विनीत लेखक भी अपने बाल्यकाल में उक्त कोलाहल की प्रतिध्वनि सुना करता था। परन्तु अब महर्षि दयानन्द की महिमा से विश्नोई लोग वैदिक वर्णाश्रम धर्मानुयायी जनता के वैसे ही आदृत अङ्ग बन गए हैं, जैसे कि अन्य द्विजाति हैं।

वर्णाश्रम-व्यवस्थित विशाल वैदिकधर्म का अङ्ग बनकर भी जो कई विश्नोई महाशय आजकल विश्नोईसभाओंकी स्था-पना और विश्नोईपन्थ की विलग बाँसुरी बजाने का आन्दोलन मचा रहे हैं और इसप्रकार आर्यसमाज के गुणकर्मानुसारी सिद्धान्त से दूर जा रहे हैं, वह उनकी कूपमण्डूकतामात्र का परिचय दे रहा है और आर्यसमाज और उसके संस्थापक आ-चार्य महर्षि दयानन्द के प्रति उनकी कृतज्ञता का विघातक है। कहाँ आर्यधर्म के विश्वव्यापक विश्वजनीन सिद्धान्त और कहाँ आजकलके जन्मजात पृथक् २ ज़ात पाँत और पन्थाइयों की संकीर्ण सभाएँ !!! दोनों में आकाश पाताल का महदन्तर है।

मोहम्मदपुर देवमल में स्वामी सहजानन्दजी के प्रचार का प्रबल प्रभाव पड़ा। वहाँ की प्रायः समस्त बिश्नोई जनता

आर्यधर्म में प्रविष्ट हो गई। मोहम्मदपुरदेवमल आर्यसमाज का प्रधान गढ़ बन गया तथा वहाँ का आर्यसमाज इस ज़िले में आर्यसामाजिक शक्ति का केन्द्र समझा जाने लगा। अब भी मोहम्मदपुर देवमलका आर्यसमाज बड़ा प्रभावशाली है। सेठ लेखराजसिंह जी ऑनरेरी मुंसिफ़, ऑनरेरी मैजिस्ट्रेट तथा सेठ प्रवीणसिंह जी भूतपूर्व मेम्बर डिस्ट्रिक्ट बोर्ड बिजनौर उस के प्रधान स्तम्भ हैं।

नगीना आर्य-समाज

नगीना बिजनौर ज़िले के प्रधान उपनगरों में से है। वह २९° २६′ उत्तरीय अक्षांश तथा ७८° २६′ पूर्वीय देशान्तर पर बिजनौर से १९ मील के अन्तर पर स्थित है तथा एक पक्की सड़क द्वारा उससे संबद्ध है। यह ईस्ट इंडियन रेलवे का स्टेशन है। उसकी जनता में मुसलमान अधिक हैं अर्थात् कुल बसीकृत में दो तिहाई मुसलमान हैं। मुसलमानों से उतर कर प्रभावशाली विश्नोई लोग हैं, जो अब प्रायः आर्यसमाज में प्रविष्ट हो चुके हैं।

जैसा कि इस ज़िले के भौगोलिक वर्णन में पूर्व लिखा जा चुका है, नगीना आबनूस की काली लकड़ी पर खुदाई के सुन्दर काम के लिए विश्वविख्यात है और वहाँ काँच की शीशियाँ और कण्डी आदि बाँस के बर्तन भी बनते हैं। यह उपनगर बहुत गुंजान बसा हुआ है और स्वास्थ्य की दृष्टि से प्रशंसनीय नहीं है।

इस स्थान में आर्यसमाज के प्रवेश का इतिहास इस प्रकार है कि वहाँ सं० १६४० वि० में आर्यसमाज की नियमित स्थापना से पूर्व एक विद्वान् पं० रामयश जी गौड़ निवास करते थे, जिनका जन्म सन् १८८० वि० में हुआ था। आप श्रीमद्भागवत के कथावाचक होते हुए भी बहुत उदार विचार रखते थे। पुराणों के कृष्ण द्वैपायन वेदव्यास-कृत होने में उन को विश्वास न था। मूर्तिपूजा में भी उनकी आस्था न थी। वे भूतप्रेत आदि के अस्तित्व को मिथ्याभ्रम मानते थे। फलित ज्योतिष् के भी वे प्रतिकूल थे। उन्होंने सम्वत् १६२६ वि० में एक कन्यापाठशाला भी नगीने में स्थापित की थी, जिस का जनता ने बहुत विरोध किया था। प्रबल प्रयत्न से उसमें कुछ कन्याएँ पढ़ने के लिए प्रेरित की गई थीं। इस प्रकार मानो महर्षि दयानन्द के प्रादुर्भाव से पूर्व ही उक्त पंडित जी का मानसक्षेत्र महर्षि के बीजोपदेश-वपन के लिए जुता जुताया तैयार था। उक्त पंडित जी का गमनागमन जसपुर ज़िला नैनीताल में बहुत रहता था और वहाँ के निवासी पं० सुखदेव प्रसाद जी गुजराती ब्राह्मण वेदपाठी से, जो प्रसिद्ध आर्य सामाजिक विद्वान् थे और कांगड़ी गुरुकुल विश्वविद्यालय के स्नातक पं० ईश्वरदत्त जी विद्यालङ्कार P. H. D. (जर्मनी) के पिता थे, बहुत घनिष्ट परिचय और प्रेम था। उक्त वेदपाठी जी के पास महर्षि दयानन्द कृत सत्यार्थप्रकाश का सन् १८७५ ई० का प्रथम संस्करण देख कर और उसके विषय को पढ़कर

उक्त पं० रामयश जी के मनमें बड़ा कुतूहल उत्पन्न हुआ। उन्होंने बड़ी रुचि से उक्त ग्रन्थ का पारायण किया तथा महर्षि दयानन्द के सिद्धान्तों में उनकी श्रद्धा उत्तरोत्तर बढ़ती गई। उस समय बिरादरी के भूत का लोगों को इतना भय रहता था कि उक्त जसपुर निवासी पं० सुखदेव प्रसाद जी वेदपाठी सत्यार्थप्रकाश को रात्रि में अपने घर के किवाड़ बन्द कर के और सब से छिपा कर पढ़ा करते थे, जिससे कोई देख न ले कि आप ऐसे क्रान्तिकारी और प्रचलित प्रथा और धर्मकर्म-विरोधी ग्रन्थ के पारायण का पाप कर रहे हैं।

पं० हरिशङ्करजी दीक्षित, जिनको एक प्रकारसे नगीना आर्यसमाजका प्रधान जन्मदाता और उन्नायक कहा जासकता है, प्रशंसित पं० रामयश जी के सुपुत्र हैं। युवावस्था में वे भी अपने पिता के साथ जसपुर जाया करते थे। एक दिन पण्डित सुखदेव जी वेदपाठी के पास विद्यमान सत्यार्थप्रकाश पर, जब कि उक्त वेदपाठी जी उसको किसी अत्यावश्यक कार्यवशात् खुला छोड़कर सहसा कहीं चले गए थे, उक्त युवा पं० हरि-शङ्कर जी की भी दृष्टि जा पड़ी और उनको भी सत्यार्थप्रकाश के पाठ का चस्का लग गया। उन्होंने नगीना आकर अपने पिता जी द्वारा मंगाए हुए सत्यार्थप्रकाश की कई बार आवृत्ति की। उससे सारस्वतचन्द्रिका व्याकरण के पाठ में, जिसमें वे उस समय तत्पर थे, उनकी श्रद्धा न रही और महर्षि दयानन्द-कृत व्याकरण वेदाङ्गप्रकाश मँगाकर पढ़ने लगे तथा अष्टा-

ध्यायी भी कण्ठाग्र करते रहे। साथ ही वे अपने मिलने वाले मुंशी छेदालाल जी अग्रवाल वैश्य आदि से, जो उनके पिता के शिष्य थे, सत्यार्थप्रकाशके सिद्धान्तोंकी चर्चा करते रहते थे। प्रथम युवा पं० हरिशङ्कर की बातों पर कोई कान न देता था. परन्तु शनैः २ उनके कथन का लोगों पर कुछ २ प्रभाव पड़ने लगा। उन्हीं दिनों एक विश्नोई पन्थी साधु ब्रह्मानन्द, जो कुछ दिनों महर्षि दयानन्द का सत्सङ्ग कर आए थे, नगीने में आन कर वहाँ के विश्नोई पन्थियोंको, जिनकी बसीकत वहाँ ४०० के लगभग थी, सत्यार्थप्रकाश पढ़कर सुनाने लगे। इस पर नगीने की जनता में इन सिद्धान्तों पर विशेष चर्चा चलने लगी और विश्नोई सज्जनों में से कुछ लोग आर्य सिद्धान्तों के प्रेमी बन गये। इस प्रकार आर्य्यसमाज की स्थापना के लिए वहाँ मनुष्यों की संख्या पर्याप्त होगई तथा सं० १९४० वि० में नगीना आर्यसमाज की स्थापना विश्नोईसराय मोहल्ले में की गई। पं० रामयश जी के शिष्य और उनके पुत्र पं० हरिशङ्कर जी के घनिष्ट मित्र, मुन्शी छेदालाल जी अग्रवाल नगीना-आर्यसमाज के प्रथम प्रधान और विश्नोइयों में से भक्त हरकृष्णदास जी उपप्रधान निर्वाचित हुए। मुन्शी नत्थासिंह जी और मुन्शी केवलराम मुख्य सदस्य बनाए गए।

नगीना आर्यसमाज से प्रबल विरोध

विश्नोई पन्थियों को यज्ञोपवीत धारण कराने पर नगीना में बड़ा कोलाहल मचा था।

नगीना आर्य समाज के प्रधान जन्मदाता
वैद्य हरिशंकर जी दीक्षित

आर्यसमाज का प्रबल विरोध होने लगा। यज्ञोपवीत देने वाले उपाध्याय पण्डित मुकुन्दराम को ब्राह्मणों ने जातिच्युत कर दिया। अन्य आर्यसामाजिकों के भी बहिष्कार का उन उनकी बिरादरियों ने निश्चय किया। स्वयं विश्नोई पंथियों की बिरादरी में भी दो पक्ष होगए। एक पक्ष आर्यसमाजमें प्रविष्ट यज्ञोपवीत धारण करने वालों का था और दूसरा—उनके विरोधी पुराने विश्नोई पंथियों का—पक्ष यज्ञोपवीतधारण का विरोध करता था। विपक्षियों ने उस विश्नोई साधु ब्रह्मानन्द को, जिस का वर्णन पीछे आ चुका है और जिसने आदि में विश्नोइयों में सत्यार्थप्रकाश का प्रचार किया था, लोभ देकर अपनी ओर मिला लिया। उसने स्वयम् अपना धारण किया हुआ यज्ञोपवीत उतार दिया, अन्य कई नव-यज्ञोपवीत-धारी नव-आर्योंसे भी बल देकर यज्ञोपवीत उतरवाया और उनको गङ्गा-स्नान कराकर उन से आर्यसमाज में प्रविष्ट होने और यज्ञोपवीत धारण करने का प्रायश्चित्त कराया। इस प्रकार यह विरोधाग्नि उत्तरोत्तर प्रबल होती गई। किसी फ़ौजदारी अभियोग में आर्यसमाजस्थ पुरुषों को फँसा दिया गया, जिस में उनके १४००) व्यय होकर उनको उससे छुटकारा मिला। कुछ लोग इस विरोध से विचलित भी होने लगे, क्योंकि कई आर्यजन अपनी अपनी बिरादरी के बहिष्कार से तङ्ग आगये थे।

नगीना-गोशाला

हिन्दुजनता के इस विरोध को शमन करने के लिये पण्डित हरिशङ्कर जी ने गोरक्षा का आन्दोलन प्रारम्भ किया और नगीना में एक गोशाला की स्थापना की।

इस गोशाला के लिए उन्होंने ग्राम ग्राम घूम कर ग्रामों से ७००) संग्रह किए और नगीनेकी व्यापारिक मंडी मौलगञ्ज में विक्रयार्थ आने वाले शक्कर आदि मीठे माल पर गोशाला के लिए चुङ्गी नियत कराई, जिस से गोशाला के कोश में विपुल धनराशि एकत्र हो गई। मुरादाबाद नगर के प्रसिद्ध आर्यसमाजी रईस साहु श्यामसुन्दर जी कोठी वालों के उद्योग से स्थापित मुरादाबाद की गोशाला भी नगीनेको उक्त गोशाला में मिला दी गई और इस प्रकार यह एक विशाल गोशाला बन गई, परन्तु पीछे से इस गोशाला के प्रबन्ध के विषयको लेकर सनातनधर्मी साहूकारों और आर्यसमाजियों में कुछ झगड़ा उठ खड़ा हुआ और उस का कोश सनातनियों के ही हाथों में दे दिया गया। उन्होंने उस कोशका दुरुपयोग कर के उस को रामलीला में लगा दिया। उस के एक अंश से कुछ दिनों नगीने के बड़े महादेव के मन्दिर में एक संस्कृत-पाठशाला भी मोथेपुर ग्राम निवासी पं० विहारीलाल के अध्यापकत्व में, जिन्होंने स्वयमेव व्याकरण-केसरी की उपाधि धारण कर रक्खी थी और जो आर्यसमाज के प्रबल प्रतिपक्षी थे, चलाई गई। उक्त पाठशाला उक्त अध्यापक जी का फाल्गुन

शुक्ला एकादशी सं० १९६७ विक्रमी में प्लेग से देहान्त होजाने पर बन्द हो गई और गोशाला का सारा धन रामलीला के अभिनय में ही लगने लगा।

नगीना आर्य्यसमाज का कार्य्य पं० हरिशङ्कर जी की संरक्षामें शनैः शनैः आगे बढ़ता रहा। अगस्त सन् १८९१ ई० में एक पौराणिक उपदेशक प्रयागदत्त ने नगीना आकर आर्य-समाज के विरोध में बड़ा कोलाहल मचाया और आर्यसमाज को शास्त्रार्थ के लिए ललकारा। पं० हरिशङ्कर जी तथा मुंशी छेदालाल जी प्रधान आर्यसमाज ने उस के निराधार आक्षेपों का पूर्ण परिहार कर के जनता को उस की संस्कृतानभिज्ञता और मिथ्या कपोलकल्पना का पूरा परिचय करा दिया। आर्यसमाज के प्रभाव का सिक्का सारी बस्ती में बैठ गया। कुछ काल पश्चात् नगीनेकी रामलीलामें आए हुए कुछ गायक बालकों का आर्य्यसामाजिक-गान आर्यसमाज में कराने पर आर्यसमाजस्थ पुरुषों में मतभेद और वैमनस्य होगया। सब ने आर्यसमाज में जाना छोड़ दिया और कुछ काल के लिए आर्यसमाज के साप्ताहिक अधिवेशन बन्द रहे। इस मध्य में भूतपूर्व विश्नोईपन्थी लाला रामस्वरूप जी के उद्योग से बाल समाज की स्थापना हुई, जो कुछ समय तक चलता रहा। तत्पश्चात् इन्हीं महाशय की प्रेरणा से विश्नोईसराय मोहल्ले के नगर के एक कोने में तथा एकान्त स्थान होने के कारण, वहाँ आर्यसमाज का प्रचार विरल जान कर, आर्यसमाज के

अधिवेशन वहाँ बन्द करके, सर्राफ़ों के बाज़ार में एक किराए के बालाख़ानेमें होने लगे। इस स्थान पर आकर आर्यसामाजिक पुरुषों का पूर्वोक्त वैमनस्य शांत हो गया और सब सदस्य आर्यसमाज के अधिवेशन में सम्मिलित होने लगे।

सन् १६०३ ई० में नगीना-आर्यसमाज का प्रथम वार्षिकोत्सव हुआ। उक्त बालसमाज ने इसमें विशेष योग दिया था। इस वार्षिकोत्सव पर, किसी प्रबन्ध विषय को लेकर, फिर समाज में वैमनस्य हो गया और नगीने में दो समाज होगए।

मई सन् १६०४ ई० में नगीना-आर्यसमाज का द्वितीय वार्षिकोत्सव हुआ। यह विश्नोईसराय-आर्यसमाज का उत्सव था। इस उत्सव के अवसर पर, आर्य उपदेशकों के व्याख्यान, मोहम्मदीय धर्म की समालोचना पर सुन कर, नगीनेके मुसलमानों में नगीना आर्यसमाज से विवाद (मुबाहिसे) का उत्साह (जोश) उमड़ पड़ा और ५ जून सन् १६०४ ई० से ११ जून सन् १६०४ ई० तक नगीना-आर्यसमाज और अञ्जुमन-ए-इस्लामिया नगीना के मध्य, नगीने का वह मशहूर मुबाहिसा मौखिक और लेखबद्ध हुआ, जिसकी उस समय सर्वत्र धूम मची रही थी और जो दोनों पक्ष के हस्ताक्षरित भाषणों और लेखों से युक्त, पृथक् पुस्तकाकार प्रकाशित हो चुका है। इस मुबाहिसे में आर्यसमाज की ओर से वाग्मिवर राजरत्न मास्टर आत्माराम जी अमृतसरी और मुसलमानों की ओर से, मौलवीफ़ाज़िल मौलवी अबुलवफ़ा

सनाउल्ला साहब अमृतसरी वक्ता थे। यतः उक्त लेखबद्ध, पुस्तकाकार-प्रकाशित, मुबाहिसे में दोनों पक्ष के तर्क, वितर्क और प्रमाण जनता के सामने प्रस्तुत हैं, इसलिए उस पर किसी सम्मति का उल्लेख करना, ऐतिहासिक का कर्तव्य नहीं है। इस के अतिरिक्त आर्यसमाज की सदा से, यह नीति भी रही है कि धार्मिक विवाद के जय-पराजय के निर्णायक, वादी-प्रतिवादी वा कोई मध्यस्थ मनुष्य नहीं होसकते, प्रत्युत श्रोता वा वाचक ही अपने लिए उस विवाद के सर्वोपरि उत्तम मध्यस्थ वा व्यवस्थापक हो सकते हैं, क्योंकि प्रत्येक धर्म का आधार विश्वास पर है और प्रत्येक का विश्वास, उस की अपनी आत्मा के आदेशानुसार ही, हो सकता है। किसी की आत्मा को कोई मध्यस्थ, बलात् किसी बात पर विश्वास करनेके लिए, विवश नहीं कर सकता। इसलिए जय-पराजय का प्रश्न उठाना वा उस के निर्णय के लिए मध्यस्थ का मुँह ताकना, निरी मूर्खता और अन्याय है। विज्ञ जनता ही स्वय-मेव अपनी निर्णायक वा न्यायाधीश हो सकती है।

सन् १६०६ ई० में नगीना में आर्य्यसमाज का तृतीय वार्षिकोत्सव हुआ, जो दूसरे आर्यसमाजका था। इस प्रकार-इस मध्य में नगीने में दोनों समाजों के दो दो पृथक् पृथक् (कुल मिला कर तीन) वार्षिकोत्सव हुए। प्रथम वार्षिको-त्सव सम्मिलित था और द्वितीय तथा तृतीय वार्षिकोत्सव पृथक् पृथक् हुए थे। तत्पश्चात् कुछ महाशयों के उद्योग

से, दोनों समाज एक हो गए और १९०८ ई० में आर्य-समाज का चतुर्थ वार्षिकोत्सव, दोनों समाजों का सम्मिलित और बड़े समारोह के साथ हुआ। इस मध्य में आर्यसमाज के साप्ताहिक अधिवेशन, साहू विश्वेश्वरनाथ जी रईस नगीनाके स्थान पर, होते रहे। तत्पश्चात् आर्यसमाजस्थ पुरुषों की यह सम्मति हुई कि आर्यसमाज नगीने का निज-समाजमन्दिर बनाया जाय और तदनुसार नगीने के मच्छुलहटा मोहल्ले में, सडक के किनारे, बड़े महादेव के मन्दिर से पश्चिम की ओर, पूर्वसामना अहाता, समाज-मन्दिर के लिए, ८ नवम्बर सन् १९०८ ई० के रजिस्टर्ड विक्रयपत्र (बैनामे) द्वारा तीन सहस्र और साढ़े तीन सौ रुपये ३३५०) को क्रय किया गया, जिस में से ५४५) कोश में पूर्व एकत्र था, १४०५) उसी समय आर्यसमाजस्थ पुरुषों से, तदर्थ दान लिया गया और शेष १४००), साहू विश्वेश्वरनाथ जी साहूकार नगीना से, आर्यसमाज नगीना के अन्तरङ्ग सदस्यों के प्रोमेज़री नोट पर, ऋण लिया गया, जो उक्त साहू जी ने, सन् १९१४ ई० के वार्षिकोत्सव पर, ब्याज सहित, आर्यसमाज-नगीना को दान दे दिया। इस प्रकार उन की उदारता से नगीना-आर्यसमाज ऋणमुक्त हो गया। इस समाजमन्दिर का सिंहद्वार, साहू हरदेवसहाय जी ने, ६००) की लागत से, बनवा दिया और शाह जी नारायणदास जी ने, अपनी भार्या श्रीमती दुर्गादेवी के स्मारक में ३५०) के व्यय

से, एक बराण्डा बनवाया । समाज-मन्दिर का कूप, लाला शिवलाल जी के पुत्र ला० किशोरीलाल जी और उनके भ्राता ला० कल्लूमल जी के दान से बना था । ला० कल्लूमल जी ने, मन्दिर की भूमिके क्रय में भी, बहुत प्रयत्न किया था । समाज मन्दिर में, सड़क की ओर, ४ दूकान भी विद्यमान हैं, जिन के किराये से समाज को, धनकी एक अच्छी राशिकी आय है. । समाज मन्दिर में १०) के व्यय से, चौ० चुन्नीसिंह जी रईस नहटौर ने, शौचालय भी बनवा दिया है । इस समय समाज-मन्दिर का मूल्य अठारह सहस्र रु० १८०००), उसके वर्तमान मन्त्री जी ने, कूत कर लिखा है ।

नगीनाआर्यसमाज के
मुख्य उन्नायक
पं० हरिशंकर जी दीक्षित वैद्य

आर्यसमाज नगीना के संस्थापन, उस के विशाल मन्दिर के निर्माण और उस की अनुकरणीय उन्नति का, बहुत कुछ श्रेय, प्रशंसित, पण्डित हरिशंकर जी दीक्षित वैद्य को है । आप इस समाज के प्राणस्वरूप रहे हैं और कई वर्षों तक (प्रथमवार सन् १८९७ ई० से सन् १८९९ ई० तक तीन बर्ष और द्वितीयबार सन् १९०३ ई० से सन् १९२६ ई० तक २४ वर्ष अर्थात् कुल २७ वर्ष) उस के प्रधानपद को, सुशोभित करते रहे हैं । नगीना-आर्यसमाज की उपदेशवेदी, आप के व्याख्यानों और उपदेशों से मुखरित रहती थी । नगीना आर्यसमाज के सदस्यों में, आप का संस्कृत-वैदुष्य, धर्मग्रन्था-

नुशीलन और उन के प्रमाण-वाक्यों का अभिनव-सङ्गतिकरण-सामर्थ्य सर्वोपरि है। आप का अधिक समय, स्वाध्याय और समाज-सेवा के ही समर्पित रहा है। आप का व्यवसाय वैद्यक है और यद्यपि आपका योगक्षेम और निर्वाह, चिकित्सा से ही चलता है, तथापि आपकी निस्पृहता और निर्लोभता प्रशंसनीय है। आजकल के वैद्योंके समान आप 'नुसख़ेबाज़ी' के क़ायल नहीं हैं और आपके योग (नुसख़े) अति स्वल्प मूल्य के होते हैं—वे दो चार पैसे के मूल्य से अधिक के नहीं होते हैं। आप वेदादि आर्यसमाज के मान्य साहित्य के भी अच्छे अभ्यासी हैं और अथर्ववेद के कई काण्डोंका, आपने युक्तियुक्त भाष्य भी किया है, जिन में से प्रथम काण्ड प्रकाशित हो चुका है। आप 'तेवहार-पद्धति' तथा 'पितृकर्म-मीमांसा' आदि और भी अनेक ग्रन्थों के प्रणेता हैं। आर्यसमाज के सिद्धान्तों पर, आपकी अटल श्रद्धा रही है, परन्तु आप उदारविचारक हैं। अब कुछ दिनोंसे, आपके विचार कट्टर आर्यसामाजिकत्व वा साम्प्रदायिकतासे, हटकर अधिक उदारता के वायुमण्डल में विहार कर रहे हैं। आप ने पितृशब्द का अभिनव अर्थ, अपने उक्त 'पितृकर्ममीमांसा' में, प्रकाशित किया है। आप की सम्मति में, 'पितर', वायुविशेष की संज्ञा है और आप उन के तर्पण की, अपनी पद्धति भी, लिख रहे हैं। यह विषय, वैदिक देवों और पितरों के विचारक विद्वानों के, बिमर्श का पात्र है। परमोदार, महर्षि दयानन्द द्वारा संस्थापित और

विशाल, वैदिकधर्म की अनुयायिताके अभिमानी आर्यसमाज में साम्प्रदायिक संकीर्णता का प्रसार न होना चाहिए। उस को "सत्य के ग्रहण और असत्य के त्याग में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए"। यह पंक्ति तो प्रसङ्गोपात्त संकेतरूपेण लिखी गई, प्रकृत विषय आर्यसमाज नगीना के वर्णन का है। नगीना आर्यसमाज, नगीना नगर तथा उसके परिसर में, पं० हरिशङ्कर जी का, उनके परोपकारपरायणता आदि गुणों के कारण, अच्छा आदर है। "गुणैर्हि सर्वत्र पदं निधीयते"।

पं० लक्ष्मीनारायणजी उपाध्याय

नगीना-आर्यसमाज के साप्ताहिक अधिवेशन आदि के कार्य-सञ्चालन में, सवहारा-वात्सल्य, पण्डित लक्ष्मीनारायण जी उपाध्याय का भी, पर्याप्त उद्योग रहा है। जब आप नगीने में अध्यापक थे, तो वहाँ के सार्वजनिक कार्यों में, अच्छा भाग लेते थे। आपने अपने प्रयत्न से, वहाँ एक नागरी प्रचारिणी सभा और एक सरस्वती-पुस्तकालय भी, स्थापित किया था, जिसने वहाँ के नवयुवकों में, नागरीलिपि और हिन्दीसाहित्य के प्रति कुछ रुचि का संचार किया था। किन्तु उनके चले आने पर उनके इस उद्योग की इतिश्री हो गई।

अन्य उन्नायक महाशय

नगीना आर्यसमाज के उन्नायकोंऔरकार्यकर्ताओं

में, विश्नोई पन्थ से आए हुए, महाशयों का वर्ग, विशेष प्रभाव शाली है। बा० रामस्वरूप जी, बा० हरलालसिंह जी, भगत् ईश्वरी प्रसाद जी, चौधरी न्यादरसिंह जी और मुंशी श्याम सिंह जी के नाम मुख्यतः उल्लेखनीय हैं।

बा० रामस्वरूप जी, बहुत काल तक नगीना आर्य-समाज के मन्त्री रहे हैं और आर्यकन्यापाठशाला के चलाने में भी, आपका अधिक उद्योग रहा है।

बा० हरलालसिंहजी

बा० हरलालसिंह जी पुराने आर्य हैं। आपने अपनी भानजी सौभाग्यवती लीलावती का विवाह, जिसको आपने पालपोस कर अपनी पुत्री बनाया हुआ था, ज़ात पांत के बन्धन तोड़कर किया था अर्थात् अपनी पुरानी ज़ात के अनुसार, आप बनिये विश्नोई थे और उक्त पुत्री का पाणिग्रहण, पुरानी ज़ात के अनु-सार, सुनार विश्नोई बा० चण्डीप्रसाद जी M. A. वकील देहरादून निवासी को कराया गया था। इस विवाह के समय आप का बड़ा विरोध हुआ था, किन्तु आपने अपने महान मनोबल का परिचय दे कर, गुणकर्मानुसार, वैदिक विवाह के आदर्श की ओर, पग बढ़ाया था। इसी विवाह के उपलक्ष में आपने बिजनौर-आर्य्यसमाज-मन्दिर का सिंहद्वार भी ४००) के व्यय से बनवाया था, जिसका उल्लेख बिजनौर-आर्यसमाज के वर्णन में हो चुका है।

भगत् ईश्वरीप्रसाद जी वैदिकधर्म के श्रद्धालु और उदार दानी हैं।

चौधरी ग्यादरसिंह जी समाजसेवा में त्यागपरायण, परिश्रमी और साहसी सज्जन हैं।

मुंशी श्यामसिंह जी भी उत्साही और वैदिकधर्म के प्रेमी महाशय हैं। नगीना के वर्तमान मन्त्री आप ही हैं।

बा० रामचन्द्र सहाय जी गर्ग B. A., LL. B., Advocate वर्तमान प्रधान, और ला० श्रीराम जी कोषाध्यक्ष भी नगीना आर्यसमाज के प्रमुख उद्योगी रक्षायकों में से उल्लेखनीय हैं।

इस समाज के सदस्यों के ही उद्योग से एक वैदिक कन्यापाठशाला भी, चल रही है, जो डिस्ट्रिक्ट बोर्डसे सहायता-प्राप्त है। यहाँ के आर्यसामाजिकों की सहायता से, एक रात्रि-पाठशाला भी स्थापित है, जिस में दलित-समुदायों के बालकों को, अन्य-छात्रों के साथ, प्रारम्भिक शिक्षा दी जाती है। इस समाज का अन्य विवरण कोष्ठक-पत्रों में अङ्कित है।

नजीबाबाद-आर्यसमाज

नजीबाबाद उपनगर, जो कि बिजनौर ज़िलेमें इस नाम की तहसील और परगने का मुख्य स्थान है, बिजनौर से २१ मील, प्रसिद्ध मालिनी नदी के वामतीर पर, २६° ३७' उत्तरीय अक्षांश, ७८° २१' पूर्वीय देशान्तर पर, समुद्र-तलसे ८७५ फ़ीट के लगभग उँचाई पर, बसा हुआ है। यह उपनगर कच्ची सड़कों द्वारा दक्षिण-पश्चिम में बिजनौर से, दक्षिण में नहटौर से, दक्षिण पूर्व में नगीने से, पूर्व में कोटक़ादर से, उत्तर-पूर्व

में कोटद्वार से और उत्तर-पश्चिम में हरिद्वार से सम्बद्ध है। ईस्टइंडियन रेलवे की मुख्य लाइन इस उपनगर के दक्षिण को होकर जाती है. जिसका स्टेशन बसीकत से आध मील है। इस स्थान से कोटद्वार को भी रेलवेलाइन की एक शाखा गई है, जो कि वहाँ को जाने वाली सड़क के पास पास जाती है।

इस उपनगर को रुहेलों के प्राधान्यकाल में, नवाब नजीबुद्दौला ने बसाया था और जलालाबाद से हटा कर परगने का मुख्य स्थान यहाँ स्थापित किया था। सन् १७५५ ई० में, उसने इस की बस्ती से, डेढ़ मील पूर्व को. पत्थरगढ़ वा नजफ़गढ़ का दुर्ग बनावाया था। नजीबुद्दौला का पुत्र ज़ाबिता ख़ाँ था. जिसका स्मारक नजीबाबादका ज़ाबितागंज का मोहल्ला,जो नजीबाबाद की बसीकत का पूर्वीय भाग है, अब तक विद्यमान है। ज़ाबिताख़ाँ का पुत्र नवाब मुईनुद्दीन था और उस का पुत्र नवाब महमूद ख़ाँ था, जो सन् १८५७ ई० के सिपाही-विद्रोह में, अंग्रेज़ों का द्रोही माना जा कर अपनी रियासत से, च्युत किया गया था और आजीवन कालेपानी का दण्ड पाकर, कारावास में मृत्यु को प्राप्त हुआ था।

नवाब महमूद ख़ाँ के व्यक्तित्व, औदार्य, साम्प्रदायिक-निष्पक्षपात और शिष्टता की प्रशंसा, उस समय के लोगों के मुख से सुनी गई है। सन १८५७ ई० में, अपनी नवाबी के स्वातन्त्र्यसंग्राम में, उस की प्रवृत्ति के मूल प्रेरक, उस के भानजे शफ़ीउल्लाख़ाँ और अहमदुल्लाख़ाँ कहे जाते हैं।

सन् १७७२ ई० में नजीबाबाद पर, मरहटों ने आक्रमण किया था और सन् १७७४ ई० में, वह अवध के नवाब वज़ीर के हस्तगत हुआ था। फिर उस का महत्व, कम होता गया और सन् १७६६ ई० में, जब कप्तान हार्डविक (Hardwicke) यहाँ आया था, तो उस ने नगर को ह्रासोन्मुख दशा में, देखा था। सन् १८५७ के सिपाहीविद्रोह के पश्चात्, अंग्रेज़ों ने सन् १८५८ ई० में विजय प्राप्त करके, नवाब महमूद ख़ाँ के महल को नष्ट कर दिया और सारे नगर में लूट मार मची रही।

१७ सितम्बर सन १८८८ ई० को यहाँ मोहर्रम के अवसर पर, हिंदु-मुसलमानों में बड़ा बलवा हुआ था, जिसको उस समय के ज्वाइंट मेजिस्ट्रेट कुँवर भारतसिंह जी ने, बड़ी वीरता और बुद्धिमत्ता से दबाया था।

नजीबाबादकी बसीकृत २० सहस्र के लगभग है, जिस में प्रायः आधे हिंदु और आधे मुसलमान हैं, परन्तु यहाँ के नगरपरिषद् (Municipal Board) में, येन केन प्रकारेण मुसलमानों का ही प्रभाव प्रबल रहता है।

नजीबाबाद में आर्यसमाज की आद्यस्थापना

नजीबाबाद में आर्य-समाज के प्रवेशका इतिहास, बदायूँ निवासी पण्डित रामजीलाल शर्मा रेलवे प्लेट लेयर द्वारा, धर्मचर्चा से प्रारम्भ होता है। उक्त महाशय, नगीना-आर्यसमाज के

जन्मदाता पण्डित हरिशङ्कर जी वैद्य के सहयोग से, कुछ दिनों तक नजीबाबाद के पुरुषों के हृदय में, वैदिक धर्म का बीज बोते रहे, जो शनैः शनैः अंकुरित होकर, मिति आषाढ़ बदि द्वादशी सम्वत् १९३८ विक्रमी, तदनुसार २३ जून सन् १८८१ ई० को, मोहल्ला दीवानपरमानन्द में स्थित झण्डी वालों के घेर में, नजीबाबाद-आर्य्यसमाज के रूप में प्रादुर्भूत हुआ। इस स्थापना-कार्यमें, उक्त दोनों महाशयों के अतिरिक्त, काशीपुर-निवासी मुंशी वृन्दावनजी का भी सहयोग था, जो विख्यात, आर्यवाग्मी, मा० आत्माराम जी अमृतसरी के धर्म-पिता (श्वशुर) हैं। प्रारम्भ में उस के सदस्यों में पण्डित बालमुकुन्द जी मुख़्तार. मुंशी लक्ष्मी नारायण जी, साहू बैजनाथ जी रईस, ला० ज्वालाप्रसाद जी (कांगड़ी गुरुकुल विश्वविद्यालयके स्नातक सौम्यमूर्ति, संयमी पण्डित देवराज जी विद्यालंकार विद्यावाचस्पति के पिता), लाला शङ्करलाल जी (पं० सुरेन्द्रनाथ जी, आयुर्वेदशिरोमणि स्नातक, गुरुकुल-वृन्दावन के पिता) मुख्य थे। उस समय हिन्दु जनता का विरोध बड़ा प्रबल था। ला० रोशनलाल जी के पिता ला० मुकुन्दीलाल जी के आर्य सभासद् बनने पर, जैनियों ने भी विरोध किया था। उन दिनों नगीने के प्रशंसित, हरिशङ्कर जी वैद्य, इस समाज की बाल्यावस्था में, उसकी विशेष रक्षा करते रहे। वे प्रत्येक साप्ताहिक अधिवेशन में, नगीने से

नजीबाबाद् आ कर, व्याख्यान दिया करते थे। उसी काल में एक बाहर के पौराणिक पण्डित प्रयागदत्त ने, नजीबाबाद आन कर वहाँ की हिन्दुजनता को, आर्य्यसमाज के विरुद्ध बहुत भड़काया था। एक दिन विरोधियों की एक धूर्तमंडली, आर्यसमाज के साप्ताहिक अधिवेशन के समय, आर्यपुरुषों पर आक्रमण करने के लिए चढ़ आई और यज्ञ के हवनकुण्ड में, कीचड़ आदि अपवित्र पदार्थ फैंकती रही तथा गाली गलौच बकती रही। आर्यजन पर्याप्त काल तक, उनके विरोध का सामना करते रहे और आर्यसमाज का कार्य्य चलाते रहे। पीछे से इस विरोधाग्नि के शान्त होने पर, उनका उत्साह भी मन्द पड़ गया और शनैः शनैः समाज का कार्य्य, शिथिल पड़ने लगा। अन्ततोगत्वा भस्मी से आच्छादित अग्नि के समान उस समय नियमित आर्यसमाज का स्वरूप अदृष्ट होगया अर्थात् उस समय कुछ अवधि के लिए समाज बन्द हो गया।

पुनः स्थापना
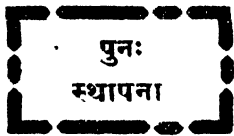
सम्वत् १९५२-०५३ वि० (सन् १८९५-०९६ ई०) में, इस ज़िले में, आर्यसमाज के प्रसिद्ध प्रचारक और तार्किक, प्रतिवादिभयङ्कर, पञ्जाब के जगराँवा वास्तव्य, पण्डित कृपारामजी का, पवित्र पदार्पण हुआ और आर्यधर्मप्रसार का प्रयत्न, प्रबलता से प्रारम्भ हुआ, जिसको इस इतिहास में, कृपाराम-प्रयत्न-काल का नाम दिया गया है। इसी काल में ज्येष्ठ सुदि प्रतिपदा सम्वत् १९५४ वि० (१ जून सन् १८९७ ई०) को,

प्रशंसित पण्डित कृपाराम जी द्वारा, नजीबाबाद आर्यसमाज का पुनरुज्जीवन होकर, उस की पुनःस्थापना हुई। उस के प्रधान पं० बालमुकुन्द जी तथा मन्त्री मास्टर हरगुलालसिंह जी, निर्वाचित हुए। इसी काल में धर्मवीर पं० लेखराम जी आर्यमुसाफ़िर के धर्मवेदि पर, बलिदान होने के कारण, आर्य सामाजिक जगत् में उत्साहकी प्रचण्डअग्नि प्रदीप्त हो रही थी, क्योंकि इसी वर्ष मिति फाल्गुन सुदि तृतीया सम्वत् १९५३ वि० (६ मार्च सन् १८९७ ई०) को, उक्त धर्मवीर ने, एक मतमदोन्मत्त मोहम्मदी के हाथ से, अपनी दिव्यदेह को, वैदिक-धर्म की वेदि पर, बलि दिया था और उक्त तृतीया तिथि को, वीर-तृतीया की उत्तम उपाधि प्रदान की थी। नजीबाबाद-आर्य-समाज भी धर्मवीर के स्मारक पर, अपनी श्रद्धा के पुष्प चढ़ाने में, पश्चात्पद नहीं रहा। उसने ला० मिट्ठनलाल जी के उद्योग से १३७॥=)॥। एकत्र करके, श्री लेखराम-स्मारक-निधि के लिए, आर्यप्रतिनिधिसभा संयुक्तप्रान्त की सेवा में, भेजे थे तथा नगर और उसके आसपास के ग्रामों में, प्रचार का कार्य बड़े वेग से किया था। इस प्रचार-कार्य में, समाज के पुस्तकाध्यक्ष साहनपुर निवासी स्वर्गीय पं० जयदेव जी शर्मा, मुंशी लक्ष्मीनारायण जी, तथा मास्टर हरगुलाल जी ने भजनों और व्याख्यानों द्वारा बड़ी लग्न से योग दिया था।

सन् १८९८ ई० में नजीबाबाद आर्यसमाज का, प्रथम वार्षिकोत्सव हुआ और तब से इस समाज के वार्षिकोत्सव,

प्रतिवर्ष बड़े समारोह से होते रहे हैं। नांगल के कार्तिकी गङ्गा स्नान मेले पर भी, यह समाज प्रतिवर्ष वैदिक धर्म का, प्रचार करता रहा है। उस का एक शास्त्रार्थ भी, पौराणिक सनातनियों से हुआ था, जिसका जनता पर विशेष प्रभाव पड़ा था।
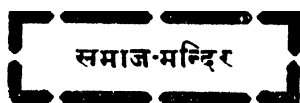
समाज-मन्दिर

२७ दिसम्बर सन् १९०७ ई० को, नजीबाबाद-आर्यसमाजके मंदिर के लिए, भूमि-क्रय की गई और उसका विक्रयपत्र (बैनामा) पं० बालमुकुन्द जी, ला० शङ्करलाल जी, तथा पं० रामगोपाल जी के नाम लिखा गया और वह ७ एप्रिल सन् १९०८ ई० को रजिस्टर्ड हुआ। उस पर विशाल आर्यसमाजमन्दिर, निर्माण कराया गया, जिसकी लागत सम्प्रति १८०००) के लगभग है। इस मन्दिर की रजिस्ट्री, संयुक्त प्रान्तीय आर्यप्रतिनिधिसभा के नाम, १ अक्टूबर सन् १९१३ ई० को, हो चुकी है। आर्यसमाजमन्दिर की भूमि पर, कई अभियोग भी चले थे, जिनमें आर्यसमाज के पक्ष की विजय हुई। इस समाज का एक भवन, नजीबाबाद के समीपवर्ती ग्राम साहनपुर में भी है, जो श्रीमती कुड़िया देवी जी की प्रदत्त भूमि पर १५००) के लगभग की लागत से, बना है और उसमें आर्य-कन्यापाठशाला की एक शाखा का कार्य चलता है। इस भवन की भी रजिस्ट्री, उक्त आर्यप्रतिनिधि के नाम से हो चुकी है।

आर्य-कन्यापाठशाला
नजीबाबाद

नजीबाबाद-आर्यसमाज के आधीन समाजमन्दिर में, एक आर्य-कन्यापाठशाला तथा समीपस्थ मोहनपुरग्राममें, उसकी शाखा कन्यापाठशाला चल रही है। यह कन्यापाठशाला प्रारम्भमें सन १९०१ ई० में, साहू रघुनाथदास तथा साहू जगमन्दरदास आदि महानुभावों ने स्थापित की थी, परन्तु उसका सञ्चालन समुचित न होने के कारण, सन् १९०३ ई० में वह आर्यसमाज के प्रबन्ध में सौंप दी गई। तब से उसका नाम आर्यकन्यापाठशाला रक्खा गया। पाठशाला का प्रबन्ध १५ सदस्यों की एक अन्तरङ्ग सभा करती है। शिक्षा वरनाक्युलर मिडिल तक है। प्रयाग महिला विद्यापीठ की परीक्षाएँ भी दिलाई जाती हैं। अब तक इस से १० लडकियां मिडिल परीक्षा उत्तीर्ण कर चुकी हैं और २००० के लगभग कन्याओंने यहाँ शिक्षा पाई है। सम्प्रति ११० कन्याओं को ५ अध्यापिका पढ़ाती हैं। व्यय ११५) मासिक के निकट है। ६०) मासिक नजीबाबाद म्यूनिसिपल-बोर्ड से सहायता मिलती है। शेष व्यय दान तथा स्थिर कोष के सूद से चलता है। स्थिर कोष में, ११००) संयुक्तप्रान्तीय आर्यप्रतिनिधि सभाके पास तथा ११००) साहू भगवती प्रसाद जी द्वारा व्रजराजशरण-फ़गड के नामसे, लखनऊ-आर्य-कोआपरेटिव बैङ्क में जमा है। पाठशाला के संचालन में नजी-बाबाद आर्य स्त्रीसमाज की सहायता सराहनीय है। मोहन

पुर की शाखा-पाठशाला, १०) मासिक कुँवर शमशेरजङ्ग जी रईस साहनपुर के दान तथा २०) मासिक बिजनौर डिस्ट्रिक्ट-बोर्ड की सहायता से चलती है। पाठशाला की कन्याओं की एक बालसभा भी है, जिसके अधिवेशन प्रति शनिवार को होते हैं और लाला रामरत्नलालजी की पुत्री कुमारी सावित्री देवी जी उसकी मंत्रिणी हैं।

नजीबाबाद की आर्यकुमार-सभा भी एक जीती जागती संस्था है जो ला० मुत्सद्दीलाल जी और ला० बनारसीलाल जी के उत्साह और उद्योग से १३ वर्ष से चल रही है। उस के मोहम्मदीयोंसे कई शास्त्रार्थ हुए थे तथा उस का एक बड़ा शास्त्रार्थ जैनियों से भी हुआ था जिस में उस की ओर से प्रसिद्ध स्वामी सत्यानन्द जी और जैनियोंकी ओर से पण्डित बनारसीदास जी वक्ता थे। इन शास्त्रार्थों का जनता पर अच्छा प्रभाव पड़ा था। इस समय आर्यकुमार-सभा के मंत्री श्री राम सिंह जी विद्यार्थी हैं।

पार्वतप्रान्त गढ़वाल में दलितोद्धार

नजीबाबाद आर्यसमाज के वैदिक-धर्म-प्रचार में सब से बड़ा काम पार्वतप्रान्त गढ़वाल ज़िले में दलितोद्धार का आन्दोलन है। उसने दिसम्बर सन् १९१७ ई० से वहाँ कार्य आरम्भ कर रक्खा है। २६ दिसम्बर सन् १९१७ ई० को बोर ग्राम में डोमों के दलित समुदाय को आर्यसमाज की दीक्षा देने के लिए पण्डित

आनन्दीलाल तथा मुंशी लक्ष्मीनारायण आदि ने वहाँ के लिए प्रस्थान किया। मादकद्रव्यनिवारिणी सभा के प्रचारक, प्रयाग के पं० देवीदत्त जी भी उनके साथ थे। दुगड्डे पहुँचने पर वहाँ के पटवारी आत्माराम ने इनको यह लिखित आज्ञा दी कि बे साहब इलाके की इजाज़त के बग़ैर बोर ग्राम न जाँय और न वहाँ धर्म-प्रचार करें, क्योंकि इस ग़ैरआइनी इलाके (Non-regulated area) में पटवारियोंको शासनाधिकार भी प्राप्त हैं। इस पर वहाँ के Subdivisional officer से इस रोक टोकके विषयमें पत्र व्यवहार किया गया, जिसपर उन्होंने अपने पत्र संख्या १६, तारीख़ २८ जनवरी सन् १६१८ ई० के द्वारा यह सूचना दी कि गढ़वाल में आर्यसमाज का प्रचार रोकने के लिए किसी पटवारी को आज्ञा नहीं दी गई (That no orders were given to any Patwari to stop Aryasamaj Preachers regarding Preaching in Garrhwal)। इस पर १० फ़रवरी सन् १६१८ ई० को बोर ग्राम में जाकर आर्यसमाज की स्थापना की गई और पण्डित आनन्दीलाल जी तथा महाशय धर्मेन्द्रनाथ जी बड़े उत्साह से कठिनाइयों का सामना करते हुए निर्भयतापूर्वक वहाँ डोमों में धर्मप्रचार करते रहे और इस दलित समुदाय के ५०० मनुष्य आर्यसमाज में प्रविष्ट किए गए। गढ़वाल के बिट कहलाने वाले उच्चम्मन्य ब्राह्मण-क्षत्रिय नामधारियों ने इन आर्यसमाज में प्रविष्ट दलितों के साथ

बड़ी क्रूरता का व्यवहार किया। उनकी जोत की भूमि उनसे छुड़ा ली। उनको मज़दूरी से पृथक् कर दिया। उनके यज्ञोपवीत तोड़ डाले। विवाहों में उनको, बहू को डोलों में बिठा कर, न निकलने दिया। उनकी बरात को कई दिन तक मार्ग में निर्जन स्थानों में रोक कर बिना अन्न जल के भूखा प्यासा तड़पाया। बधू के डोले को तोड़ कर विषैली घास में गिरा कर मर्मान्त पीड़ा दी। आर्यसमाज के प्रचारकों को लाठियों और घूसों से आहत किया, किन्तु नजीबाबाद के आर्यवीर धर्मप्रचार में बराबर डटे रहे। तत्पश्चात् यह कार्य बिजनौर-मण्डलार्योपप्रतिनिधिसभा के प्रबन्ध में दे दिया गया, किन्तु एक महाशय अर्जुनदेव ने, जो पञ्जाब-प्रादेशिक-प्रतिनिधि की ओर से गढ़वाल ज़िले में शिक्षा-प्रचारार्थ नियुक्त होकर आया था, इस प्रचारप्रबन्ध में हस्तक्षेप करके और मनमानी चलाकर गड़बड़ डाल दी और उस से इस कार्य में कुछ बाधा भी पड़ी। पर्वतप्रान्त में आर्यसमाज द्वारा दलितोद्धार और वैदिकधर्म के मनुष्यमात्रके समान भ्रातृभावके सिद्धान्त-प्रचार का कार्य बराबर जारी है।

दलितोद्धारोद्योगी मास्टर हरिशंकर जी

इस अवसर पर इसी विषय में नजीबाबाद निवासी एक और आर्य-सज्जन वैदिकधर्म की मिशनरीस्पिरिट रखने वाले मास्टर हरिशङ्कर जी के अनुकरणीय कार्य का भी कुछ उल्लेख

प्रसङ्गप्राप्त है। मा० हरिशङ्कर जी अपनी बाल्यावस्था से ही आर्यधर्मानुरागी रहे हैं। अपनी १३ वर्ष की आयु में आप नजीबाबाद आर्यकुमार-सभा के साप्ताहिक अधिवेशनों में भाषण और वादविवाद के रूप में भाग लिया करते थे। इसी से आप को आर्यधर्म में दृढ़ता और विद्याऽभिरुचि उत्पन्न हुई। एक धनिक के घर गोद लिए जाकर भी आपको विद्यापिपासा ने वहाँ न रहने दिया और वहाँ से भाग खड़े होकर आप विद्योपार्जन में लग गए। आप ने सेंट जोन्स कालिज आगरा से सन् १६२६ ई० में B.Sc. की डिग्री प्राप्तकी। जोन्स कालिज की ईसाई संस्था के छात्रावास में आपने हवन का प्रचार किया और इस में आप को कष्ट भी उठाने पड़े थे। इस के पश्चात् आप विविध विद्यालयों में अध्यापनका कार्य करते हुए आर्य-धर्म का प्रचार करते रहे। गढ़वाल ज़िले में पौड़ी मिशन हाईस्कूल उस पर्वतप्रदेश के हिन्दुओं को १० वर्ष से ईसाई बना लेने के मनसूबे से काम कर रहा था और सन् १६२३ ई० में मिशन के डिस्ट्रिक्ट सुपरिन्टेन्डेन्ट अमरीकन पादरी ने भरी सभा में उस की घोषणा भी कर दी थी, परन्तु मा० हरिशङ्कर जी ने उक्त मिशनस्कूल में अध्यापक बन कर उन के इस मनसूबे को ख़ाक में मिला दिया। वहाँ इन को स्कूल के वेतन से १०६) मासिक मिलते थे और प्राइवेट ट्यूशनसे भी अच्छी प्राप्ति थी: कुल मिला कर १५०) मासिक की आय होती थी, परन्तु इन्होंने इतनी बड़ी प्राप्ति की कुछ परवा न करते हुए

मिशन के विरुद्ध आर्यसमाज का प्रचार जारी रक्खा और इन को स्कूल की नौकरी से हाथ धोना पड़ा। इस का फल यह हुआ कि गढ़वालमें ईसाइयों के विरुद्ध तीव्र आन्दोलन उठ खड़ा हुआ और दुगड्डे, पौड़ी, चैलूसैन आदि स्थानों में आर्य-समाज के स्कूल स्थापित हो गए। इस के पश्चात् आप ज़िला नैनीतालान्तर्गत जसपुर के मिडूल स्कूल में अध्यापक नियत हुए। उन दिनों जसपुर का आर्यसमाज मृतप्राय दशामें था। मास्टर हरिशङ्कर जी ने वहाँ जागृति लाने में विशेष उद्योग किया और जब सन् १९२६ ई० के ग्रीष्म में यह विनीत लेखक जसपुर के प्रसिद्ध आर्य दानी लाला जमनादास जी के पौत्र का यज्ञोपवीत संस्कार कराने जसपुर गया था और वहाँ के आर्यसमाज को पुनरुज्जीवित किया गया था तो मा० हरिशङ्कर जी का इसमें पूरा सहयोग मिलाथा। आर्यसमाजकी इस पुनः स्थापना के पश्चात् वे ही जसपुर आर्यसमाज के मन्त्री बनाए गए थे। अपने मन्त्रित्वकाल में वे उस आर्यसमाज को भले प्रकार चलाते रहे। उन्होंने ६० यज्ञोपवीतसंस्कार स्वयं कराए। उनके प्रयत्न से समाज का चन्दा ६०) मासिक होगया। वहाँ आर्यकुमारसभा और आर्यस्त्रीसमाज भी स्थापित हो गए। आर्यस्त्रीसमाज की मंत्रिणी उक्त मास्टर जी की धर्मपत्नी थीं। वहाँ की आर्यकन्यापाठशाला भी असीम सफलतापूर्वक चलने लगी। ५०००) रोकड़ा उसको दान मिले। एक अछूत पाठशाला भी जसपुर में स्थापित हुई। आर्यसमाज की ओर

से एक उपदेशक और वैद्य उस प्रान्त में प्रचार के लिए नियुक्त किए गए। ७०००) की एक संपत्ति भी आपके प्रभाव से संयुक्त प्रान्तीय आर्य प्रतिनिधि सभा को दान मिली। जसपुर में आर्यसमाज की इस ज्वलन्त जागृति का यह फल हुआ कि वहाँ आर्यसमाज के विपक्षी इस जागृति के जनक मा० हरि शङ्कर जी के रक्तपिपासु बन गए और अतएव इन्होंने अपने कुछ मित्रोंकी सम्मतिसे अपने प्राणरक्षार्थ जसपुर छोड़ देनाही उचित समझा। फिर वे जूलाई सन् १९२७ ई० में पर्वत-प्रांतीय लोहाली नामक एक स्थान में एक स्कूल के अध्यापक नियत हुए। यह स्थान घोर अविद्यान्धकार से आच्छादित तथा मिथ्याविश्वास और परम्परागत कुप्रथाओं से परिपूर्ण था। अभी तक वहाँ आर्यसमाज के प्रकाश की कोई किरण न पहुँ-ची थी और किसी आर्योपदेशक को वहाँ जाकर प्रचार करने का साहस न हुआ था। मा० हरिशङ्कर जी ने वहाँ २ वर्ष रह कर आर्यधर्म के प्रचार में पर्याप्त सफलता प्राप्त की। अपने विद्यार्थियों के द्वारा उन्होंने दूर दूर के ग्रामों में आर्य-समाजका सन्देश पहुंचाया, जिससे वहाँ एक प्रकारकी क्रान्ति आगई और ब्राह्मण और क्षत्रियों के दाल भात के परस्पर सह-भोज का अपूर्व दृश्य दृष्टिगोचर हुआ। यह स्थान भी उक्त मास्टर जी को प्रबल विरोध के कारण ही छोड़ना पड़ा, किंतु जिस क्रान्ति का उपक्रम वे वहाँ कर आए हैं, उसको उन के अनेक शिष्य अब भी बराबर आगे बढ़ा रहे हैं। मास्टर जी

नजीबाबाद निवासी बा० हरिशंकर जी B. Sc.

संयुक्तप्रान्तीय आर्यप्रतिनिधिसभा के प्रमाणपत्र-प्राप्त अवैतनिक उपदेशक हैं और सम्प्रति इन्दौर के आर्यकुमारिकाविद्यालय में आङ्गलभाषाऽध्यापक का कार्य करते हैं। आपका चित्र और चरित आर्यजनता के सामने अनुकरणार्थ प्रस्तुत है।

नजीबाबाद में दलितद्विजाति-सहभोज

नजीबाबाद-आर्यसमाज के दलितोद्धार कार्य में २८ जून सन् १६२७ ई० का दलितों और उच्चम्मन्यों का सहभोज भी अपूर्व और चिरस्मरणीय घटना है। ज़िले बिजनौर में नजीबाबाद पुरानी रूढ़ियों के उपासक बामन बनियों का गढ़ समझा जाता है। वहाँ दलितसमुदाय को सारे नगर के मुख्य मुख्य कुओं पर चढ़ा कर पानी भरवाते हुए और उस का आचमन करते हुए तथा वैदिकधर्म के जयघोष-पूर्वक आर्यसमाज के भजन गाते हुए वैदिकधर्म की ध्वजा के साथ सारे नगर का पर्यटन और समाजमन्दिर में एकत्र होकर सब ज़ातों से आए हुए आर्यों का एक पंक्ति में बैठ कर दाल रोटी का सहभोज सचमुच अचिन्त्य और अपूर्व दृश्य था। इस आन्दोलन के मुख्य प्रेरक पं० रामगोपालजी शास्त्री रिसर्च स्कॉलर प्रोफ़ेसर दयानन्द एँग्लोवैदिक कालिज-लाहौर थे। विनीत लेखक भी उसमें सहगामीरूप से उपस्थित था।

दलितरात्रिपाठशालाएँ

नजीबाबाद के आर्यसमाज मन्दिर में २ वर्ष तक चमार

कहलाने वाले दलित समुदाय के लिए रात्रि-पाठशाला भी चलती रही, जिसमें मास्टर हरगुलाल सिंह जी अध्यापक का कार्य करते रहे और उन विद्यार्थियों को तैयार करके स्कूल में भरती कराते रहे। छः मास तक भङ्गियों के पुत्र-पुत्रियों की सम्मिलित पाठशाला भी वहाँ स्थापित रही और मा० रामरत्न लाल जी उस में विशेष भाग लेते रहे।

नजीबाबाद आर्यस्त्रीसमाज

सन् १९०३ ई० में स्वर्गीय पण्डित बालमुकुन्द जी पूर्व-प्रधान-आर्यसमाज-नजीबाबाद की धर्मोत्साहिनी भगिनी श्रीमती हरदेवीजी के उद्योग से आर्यस्त्रीसमाज की स्थापना हुई, जिसके साप्ताहिक और वार्षिक उत्सव ससमारोह और सफलतापूर्वक होते रहे हैं। सम्प्रति श्रीमती भाग्यवती देवी जी धर्मपत्नी श्री ला० मुन्सद्दी-लाल जी प्रधाना तथा श्रीमती मनसादेवी जी पुत्री मुन्शी लक्ष्मीनारायण जी मन्त्रिणी हैं। सदस्याओं की संख्या ३४ है।

विशेष कार्यकर्त्ता तथा विद्वान

(१) साहनपुर निवासी पं० गङ्गादत्त जी शर्मा वर्तमान प्रधान, जो ३० वर्ष से राजस्थान आदि प्रदेशों में उपदेश का कार्य करते रहे हैं।

(२) श्री ला० बनारसीलाल जी प्रधान आर्यकुमार सभा, जो धामपुर-आर्यसमाज के जन्मदाताओं में से ला० रूपचन्द जी के सुपुत्र हैं और आर्यकुमार सभा के प्राण हैं।

(३) पं० सुरेन्द्रनाथ जी आयुर्वेदशिरोमणि स्नातक गुरुकुलवृन्दावन, जो आर्यसमाज नजीबाबाद के स्तम्भ स्वर्गीय ला० शङ्करलाल जी के सुपुत्र हैं।

(४) म० सलेकचन्द जी, जो नजीबाबाद से गत जर्मन महायुद्ध के समय पलटन नं० ४ में भरती होकर कई स्थानों के युद्धक्षेत्रों में रहते हुए सन् १९१८ ई० में अरबइराक देश के बग़दाद स्थान में पहुंचे और वहाँ के आर्यों के सहयोग से उन्होंने १९२० ई० में Red Bank बग़दाद में आर्यसमाज की स्थापना कराई और उक्त समाज के पुस्तकाध्यक्ष रहे।

आर्यसमाज नजीबाबाद के विशेष कार्य
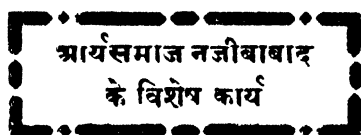
(१) सन १९०४ ई० में यहाँ संयुक्तप्रान्तीय तथा पञ्जाब की आर्यप्रतिनिधि सभाओं का सम्मिलित अधिवेशन स्वर्गीय श्री पं०भगवानदीन जी की प्रधानता में उक्त दोनों प्रतिनिधियों के काँगड़ी और वृन्दावन गुरुकुलों को मिला देने के विषय पर विचार करने के लिए हुआ था।

(२) काँगड़ी गुरुकुल विश्वविद्यालय को, जो अपना काँगड़ी ग्राम स्वर्गीय उदार दानी मुन्शी अमनसिंह जी ने, उक्त गुरुकुल स्थापित करने के लिए, दान दिया था, उसमें नजीबाबाद आर्यसमाज के प्रधान पुरुषों की मुख्य प्रेरणा थी।

(३) धौलपुर आर्यसमाज-मन्दिर के सत्याग्रह में म० धर्मेन्द्रनाथ जी, म० हरिश्चन्द्र जी तथा म० रामरत्नलाल जी

नजीबाबाद् आर्यसमाज की ओर से सम्मिलित हुए थे तथा उन की सहायता भी भेजी गई थी।

उक्त विवरण से विदित होता है कि नजीबाबाद् आर्य-समाज इस ज़िले की जीवितजागृत समाजों में से है।

धामपुर-आर्यसमाज

धामपुर उपनगर इस नाम की तहसील और परगने का मुख्य स्थान है और २६ १८' उत्तरीय अक्षांश और ७८ ३१' पूर्वीय देशान्तर पर बिजनौर से पूर्व दक्षिण को २४ मील खोह नदी के दक्षिण तीर पर उस से कोई ३ मील पूर्वको ५ सड़कों के संयोग पर बसा हुआ है। सड़कों में प्रधान सड़क बिजनौर को जाती है, वह नहटौर तक पक्की है और उस पर मोटर और इक्के चलते हैं, अन्य सड़कें दक्षिणपूर्व में सेवहारा और मुरादाबाद को, उत्तरपश्चिम में नगीना और नजीबाबाद जाने वाली हैं। अन्तिम दोनों सड़कों के बराबर बराबर ईस्टइंडियन रेलवे की मुख्य लाइन चली गई है। धामपुर का रेलवे स्टेशन नगर से बिल्कुल मिला हुआ है। इस नगर का स्वास्थ्य अच्छा है, क्योंकि बरसाती बहाव का अतिरिक्त पानी इकड़ा नामक नाला बहाकर लेजाता है। धामपुर की जन-संख्या सात सहस्र के लगभग है, जिसमें आधे से अधिक हिन्दु और आधे से कम मुसलमान हैं। इस स्थान का ऐतिहासिक महत्व कुछ अधिक नहीं है। सन् १७५० ई० में यहाँ डूण्डे ख़ाँ

रुहेले ने कुतुबुद्दीन के सेनापतित्व में लड़ने वाली देहली की शाही सेना को पराजित किया था। सन् अठारह सौ पाँच (१८०५) ई० में धामपुर को अमीर ख़ाँ पिण्डारी की लूटमार में बहुत हानी पहुंची थी और यह जनसाधारण में वृद्धों की जिह्वा पर अबतक 'अमीरख़ानी गर्दी' के नाम से प्रसिद्ध है। सन् अठारह सौ चवालीस (१८४४) ई० में धामपुर शेरकोटके स्थान में परगने और तहसील का मुख्य स्थान बनाया गया। धामपुर में गुड़, शक्कर और खाँडकी भारी मण्डी है, यह माल यहाँ दूर दूर के गाँवों से आ आकर बाहर को जाता है और यहाँ उस का लाखों का कारोबार होता है। धामपुर लोहे के शिल्प और अपने लुहारों के लिए भी प्रसिद्ध है, प्राचीन काल में यहाँ बन्दूकें भी अच्छी बनती थीं और सन् अठारहसौ अड़सठ (१८६८) ई० में पैरिस की प्रदर्शनी में यहाँ के एक कारीगर लुहार ने बन्दूकों के लिए पारितोषिक पाया था। धामपुर में पूर्व शिक्षा का प्रसार न था, किन्तु अब यहाँ की जनता की रुचि उस की ओर बढ़ती जाती है और यहाँ एक वर्नाक्युलर (भाषा) मिडिल स्कूल और एक अँग्रेज़ी मिडिल स्कूल भले प्रकार चल रहे हैं। धामपुर की सेवासमिति भी जन-सेवा का अच्छा काम कर रही है।

धामपुर में आर्य-समाज का सन्देश और प्रथम-स्थापना

धामपुर में आर्यसमाज की चर्चा सं० १९३४ वि० (सन् १८७८ ई०) में उस समय के

वहाँ के तहसीलदार ठा० तुकमानसिंह जी द्वारा पहुँची थी। मु० मन्नूलाल जी गिरदावर क़ानूनगो पर इस का विशेष प्रभाव पड़ा और उन्होंने उस समय मुरादाबाद पधारे हुए आर्यसमाज के संस्थापक आचार्य महर्षि दयानन्द के दर्शन वहाँ जाकर किए तथा उन के व्याख्यानश्रवण और शङ्का-समाधान से अपने को कृतकृत्य किया। इस प्रकार धामपुर के सब से प्रथम वा आदि आर्य प्रशंसित मुन्शी जी ही कहे जा सकते हैं। मुरादाबाद से लौट कर मुंशी जी अपने मिलने वालों में धर्म-चर्चा करते रहे और उसके प्रभाव से ला० रूपचन्द जी, ला० बुलाकीचन्द जी तथा ला० कन्हैयालाल जी के हृदय में आर्य-धर्म पर श्रद्धा उत्पन्न हो गई। इन लोगों के आर्य-धर्म के विचार शनैः शनैः परिपक्व होते रहे।

सं० १९५५ वि० से पूर्व धामपुर में कोई नियमित आर्य-समाज न था, हाँ ला० रूपचन्द और म० बहालचन्द चौकीदार आदि कई दृढ़ आर्य अवश्य थे। धामपुर में आर्यसमाज की नियमित स्थापना कृपाराम-प्रयत्नकाल में सं० १९५५ वि० (सन् १८९८ ई०) में प्रशंसित पण्डित कृपाराम जी के प्रयत्न से बाज़ार में ला० गुलाबराय जी के बालाख़ाने पर हुई थी। उस समय ला० रूपचन्द्र जी, ला० माधवशरण जी, सहोदर भ्रातृ-द्वय ला० कन्हैयालाल जी तथा ला० हज़ारीलाल जी, मु० मन्नूलाल जी क़ानूनगो, ला० छुदम्मीलाल जी पटवारी, ताजपुर रियासत के कारिन्दे मु० ब्रजमोहनलाल जी तथा

मुं० जगमोहन लाल जी उसके सदस्य बने थे। ला० कन्हैयालाल जी धामपुर आर्यसमाज के सर्वप्रथम प्रधान और ला० रूपचन्द जी सर्वप्रथम मन्त्री बनाये गए थे। ला० रूपचन्द्र और ला० माधवशरण उस समय समाज के प्रधान उद्योगी थे। ला० कन्हैयालाल और लाला हज़ारीलाल भी लाला रूपचन्द्र के ही कुटुम्बी थे।

पं० वासुदेव जी की अध्यापकता में पाठशाला की स्थापना

ला० गुलाबराय जी के उक्त बालाख़ाने पर ही धामपुर-आर्यसमाज की ओर से एक पाठशाला भी प्रशंसित पण्डित कृपाराम जी की प्रेरणा से स्थापित हुई थी और ऊमरी-निवासी पण्डित वासुदेव जी उसमें अध्यापक रक्खे गए थे। पण्डित वासुदेव जी धामपुरनिकटवर्ती ऊमरी ग्राम के निर्धन ब्राह्मण थे। उनकी शिक्षा भी कुछ अधिक न थी। साधारण हिन्दी लिखना पढ़ना जानते थे। श्री पण्डित कृपाराम जी के संसर्ग में आकर वे दृढ़ आर्य बन गए थे। जिस से उनके गांव और घरवाले उनके विरोधी हो गए और उन्होंने उनको अपने गांव में रहने न दिया। पण्डित कृपाराम जी के आदेशानुसार प्रथम वे उस पाठशाला में कुछ दिनों अध्यापक का काम करते रहे। ला० माधवशरण जी ने उनके भोजन-बसन के निर्वाह का भार अपने ऊपर ले रक्खा था। वे धामपुर आर्यसमाज के साप्ताहिक अधिवेशनों में बड़ी लगन

के साथ भजन गाया करते थे। शनैः २ उनका गान का अभ्यास इतना बढ़ गया कि वे आर्यसमाज के प्रसिद्ध गायक और भजनीक बन गए। वे स्वयं भजनों की रचना करने लगे और वासुदेव-भजनबतीसी आदि कई लघु पुस्तिकाएँ भी उन्होंने रचकर छपवाई। बिजनौर आर्यसमाज के वर्णन में उन की भजनमण्डली की नियुक्ति का उल्लेख आ चुका है।

बिरादरी का बलवान् विरोध

धामपुर में उस समय पौराणिक बिरादरी ने भी आर्यसमाज का प्रबल विरोध किया था और आर्यजन अपनी बिरादरी से बहिष्कृत कर दिए गए थे। किन्तु शनैः २ अग्रवाल बिरादरी के बहुत से सज्जन उनमें सम्मिलित होते गए और इस प्रकार वहाँ उक्त बिरादरी की दो पिड़ वा पक्ष बन गए। एक पक्ष "आर्य वालों" का था और दूसरा उनके विरोधियों का। 'आर्य वाले' पक्ष में सब आर्यसामाजिक वा आर्यसिद्धान्त को मानने वाले ही न थे, किन्तु उनके साथ भोजन-व्यवहार करने वाले कई पौराणिक परिवार भी उनमें सम्मिलित थे। इस प्रकार आदि में कतिपय आर्य पुरुषों को पौराणिक बिरादरी के जिस प्रबल विरोध का सामना करना पड़ा था, उसमें अब कमी आगई थी और वह कड़ाई न रही थी।

वार्षिकोत्सव और बल-प्राप्ति

अब आर्यपुरुषों की शक्ति इतनी बढ़ गई थी कि उनके मन में अपनी आर्यसमाज के वार्षिकोत्सव मनाने का उत्साह जागृत हो उठा । धामपुर-आर्यसमाज का सब से प्रथम वार्षिकोत्सव सं० १९६० वि० (सन् १९०३ ई०) में अस्पताल के पासवाले बा० छोटेलाल के अहाते में हुआ था । इससे आर्यसमाज के प्रचार ने धामपुर में और भी उन्नति पाई और आर्यसमाज का विरोध शनैः २ कम होता गया ।

तत्पश्चात् अक्टूबर सन् १९०५ ई० में धामपुर की मण्डी में सिकन्दराबाद गुरुकुल के संचालक विनोदप्रिय व्याख्याता स्वर्गीय पं० मुरारिलाल जी शर्मा तथा रत्नगढ़निवासी चौ० रघुराज सिंह जी ने आढ़त की दुकान खोली, इन दृढ़ आर्य-रत्नों के सहयोग से धामपुर-आर्यसमाज का बल और भी अधिक बढ़ गया और धर्म-प्रचार का कार्य बड़े वेग से होने लगा ।

शास्त्रार्थ

रियासत शेरकोट के भारी भूस्वामी रायबहादुर चौ० रणजीत्सिंह जी ने भी, जिनके भव्य-भवन और रियासत के कार्यालय धामपुर से बाहर पूर्व की ओर अल्लापुर स्थान में स्थित हैं, आर्य-धर्म के प्रचार से प्रभावित होकर धर्म-चर्चा की ओर ध्यान दिया और अपने बङ्गले पर श्रावण सं० १९५७ वि० (जूलाई सन् १९००

उदारता का परिचय देती रही हैं। आप के विचार और व्यवहार पूर्ण उन्नत और समयानुकूल (up-to-date) हैं। आप को अपनी रियासत के मुख्य मैनेजर पं० बालादत्त जी जोशी भी बड़े विश्वासपात्र, प्रबन्धनिपुण और कार्यदक्ष मिले हैं. जिस से आप की रियासत अपनी परोपकार-परायणता की पुरानी प्रसिद्धि को स्थिर रक्खे हुए है। वर्तमान बिजनौर ज़िले का आर्यसम्मेलन आपके अल्लापुर के बङ्गले के समीपस्थ आपकी भूमि पर आप की सहायता और संरक्षा से हो रहा है।

आर्यसमाज मन्दिर-निर्माण

अब तक धामपुर आर्यसमाज अपना परिमित कार्य यत्र तत्र किराए के मकानों में चलाता रहा था, किन्तु अब उस की सदस्य संख्या बढ़ गई थी और उस के कार्य की परिधि भी विस्तृत हो गई थी, तो उसको निज आर्यमन्दिर की आवश्यकता बड़े वेग से अनुभव होने लगी। नगर में किसी सुसंस्थित विशाल स्थान की गवेषणा होती रही, परन्तु कोई उपयुक्त स्थान न मिल सका। स्थान की खोज की इसी दौड़ धूप में सं० १९६२ वि० (सन् १९०५ ई०) का द्वितीय वार्षिकोत्सव भी आन पहुँचा। यह उत्सव भी बड़े समारोह से उपर्युक्त बा० छोटेलाल के अहाते में ही मनाया गया। आर्य समाज के प्रमुख विद्वान् इस पर पधारे थे। आर्यजगत् के विख्यात वाग्मिवर ब्रह्मचारी नित्यानन्द जी, और महर्षि दया-

नन्द के समय के, उनके साथ काम किए हुए, और उनके प्रधान शिष्य वृद्ध संन्यासी श्री स्वामी आत्मानन्द जी सरस्वती आदि महानुभाव उसकी शोभा बढ़ा रहे थे। श्रोताओंकी उपस्थिति अपार थी। धामपुर आर्यसमाज की सब से बड़ी आवश्यकता, आर्यसमाजमन्दिर के लिए अभ्यर्थना (अपील) की गई। वह इस रूपमें पूर्ण सफल हुई, कि हल्दौर जि० बिजनौर के प्रसिद्ध उत्साही और कर्मवीर आर्यवर्य्य श्री लाला ठाकुरदास जी के मन पर इस अभ्यर्थना का प्रबल प्रभाव पड़ा और उनके स्वर्गीय भ्राता ला० डालचन्द जी ने धामपुर रेलवे स्टेशन पर, जो १२ बिस्वे पक्की भूमि अपने भव्य-भवन (कोठी) बनाने के लिए बड़े उद्योग और उत्साह से मोल लेकर रक्खी हुई थी, और जो स्टेशन और नगर दोनों के निकट होती हुई भी जानावास से पृथक् विशुद्ध वायु-मण्डल में होने के कारण सर्वगुणगुम्फित, अत्युपयुक्त और बहुमूल्य समझी जाती थी, उसको उन्होंने धामपुर आर्य-समाज को, अपेक्षित आर्य-मन्दिर-निर्माणार्थ, उदारतापूर्वक दान देने की घोषणा कर दी। इस पर उत्सवमण्डल में चारों ओर साधुवाद का गगनभेदी नाद गूँज उठा। वृद्ध स्वा० आत्मानन्द जी ने उक्त दानी के दान की प्रशंसा करते हुए उनकी पीठ ठोकी। इस प्रकार धामपुर आर्यसमाज की एक बड़ी आवश्यकता की पूर्ति हो गई। प्रशंसित श्री लाला ठाकुरदासजी ने इस भूमि का दानपत्र (हिबेनामा) २० नव-

म्बर सन् १६०५ ई० को लिखकर रजिस्ट्री करा दिया, जिस पर साक्षिरूपेण विनीत लेखक तथा म० रूपचन्द जी के हस्ताक्षर अंकित हैं। इस भूमि पर सन् १६०६ ई० में उपरिप्रशंसित रायबहादुर चौ० रणजीतसिंह जी के करकमलों से आर्यसमाजमन्दिर की आधार-शिला धरी गई। इसी भूमि से मिली हुई १४ बिस्वे पक्की भूमि का एक अन्य खण्ड हरौलीनिवासी चौ० हरवंशसिंह जी से ता० २१ जूलाई सन् १६१३ ई० को लिखित और २३ जूलाई सन् १६१३ ई० को रजिस्ट्री किए हुए विक्रय-पत्र (बैनामा) द्वारा एक सहस्र रुपये में मोल लिया गया। इस एक सहस्र रुपए में से पाँचसौ रुपये उपरिप्रशंसित श्रीमती रानी फूलकुमारी जी ने दान दिए थे।

इस मन्दिर में एक कमरा राजगढ़ (मारवाड़) निवासी स्वर्गीय सेठ रामगोपाल जी मारवाड़ी भूतपूर्व प्रधान धामपुर-आर्यसमाज ने अपने पूज्य पिता स्वर्गवासी सेठ कन्हैया लाल जी के स्मारक में नौ सौ एक रुपए की लागत से सं० १६६८ वि० तदनुसार दयानन्द–संवत् २८ में (यह सं० दयानन्दनिर्वाणतिथि कार्तिक बदि आमावस्या सं० १६४० वि० से गिना गया है।) बनवाया था तथा एक कमरा ताजपुर रियासत के समीपवर्ती ग्राम हरौली के रईस चौ० हरवंश सिंह जी ने अपनी पत्नी श्रीमती राजपति-कुमारी-देवी जी (जो ताजपुर के रईस श्री राजा प्रतापसिंह जी की पौत्री और श्री राजा श्यामरिखसिंह जी की पुत्री थीं, और जिन का

देहान्त ३७ वर्ष ५ मास की आयु में हुआ था) की स्मृति में सम्वत् १९७० वि० तदनुसार २३ अप्रैल सन् १९१३ ई० को पाँच सौ रुपए के व्यय से निर्माण कराया था। उपर्युक्त दोनों दानों के शिलालेख उन उन कमरों के द्वार पर लगे हुए हैं। ये दोनों कमरे मध्यवर्ती बड़े हाल के पूर्व और पश्चिम को हैं।

इस बड़े हालकी पटाई के लिए पाँच सौ रुपये धामपुर की नई व्यापारी मण्डी के व्यापारियों से दान मिले थे तथा उसके १८ जोड़ी किवाड़ कानपुरनिवासी श्री लक्ष्मणदास बाबूराम के पुत्र के विवाहोत्सव में प्रदत्त पाँच सौ रुपये से तैयार हुए थे। समाजमन्दिर का कूप नांगल निवासी श्री ला० ज्योतिस्वरूपजी की फुआ (पितृस्वसा) ने अपने एक सहस्र रुपए के दान से बनवा दिया था। इस मन्दिर के चारों ओर एक उद्यान भी सुशोभित है। यह आर्यसमाज मन्दिर ऐसे अच्छे स्थान पर स्थित है कि नगर से बाहरी विशुद्ध वायुमण्डल का लाभ लेते हुए भी नगर के भीतर ही समझा जाता है, क्योंकि अब धामपुर की बसीकत बढ़ते २ रेलवे स्टेशन से जा मिली है। खेद है कि इस मन्दिर की भूमि के एक भाग के विषय में धामपुर आर्यसमाज को अपने ही एक आर्यबन्धु से दीर्घकालीन अभियोगयुद्ध (Litigation) में लिप्त होना पड़ा था, जिस में उस का चार सहस्र रुपए के लगभग व्यय हो गया। उस से इस समाज की आर्थिक दशा अति शोचनीय हो गई है और उसको हर घड़ी अर्थकृच्छ्रता का सामना रहता है।

धामपुर आर्यसमाज तथा धर्मसभा का दूसरा शास्त्रार्थ

धामपुर आर्यसमाज तथा धर्मसभा का एक दूसरा शास्त्रार्थ भी इसी सं० १९६२ वि० के द्वितीय वार्षिकोत्सव के समय श्राद्ध विषय पर हुआ था। आर्यसमाज की ओर से आर्यसमाज के प्रसिद्ध दार्शनिक तार्किक-शिरोमणि स्वा० दर्शनानन्द जी जीवित पितरों के श्राद्ध के पक्ष-पोषक वक्ता थे, तथा धर्मसभा की ओर से मोथेपुर-निवासी व्याकरण-केसरिणं-मन्य पण्डित बिहारीलाल जी मृतपितृश्राद्ध के समर्थक भाषणकर्ता थे। पण्डित बिहारीलाल जी अपने प्रमाणस्वरूप प्रस्तुत किए हुए 'ये अग्निष्वात्ताः' इत्यादि वेद मन्त्र के स्वा० दर्शनानन्दजी के किए हुए अर्थान्तर पर आपत्ति उठाते हुए उनके काषायवस्त्रों पर भी उट्टङ्कना करने लगे और कहने लगे कि उनको वेदमन्त्र का अनर्थ करते हुए अपने काषाय वस्त्रों पर लज्जा आनी चाहिए। इस व्यक्तिगत आक्षेप का आर्यसमाज की ओर से प्रतिवाद किया गया। परन्तु स्वा० दर्शनानन्द जी ने इस प्रतिवाद को रोक कर अपने विषयमें अपने प्रतिपक्षी को यथेच्छ आक्षेप करने देने की उदारता दिखलाई। इस शास्त्रार्थ का धामपुर की जनता पर आर्यसमाज के पक्ष में अच्छा प्रभाव पड़ा था और मृतक श्राद्ध की असारता सब को भले प्रकार ज्ञात हो गई थी।

मुख्य सदस्यों का देहान्त और स्थानत्याग

सम्वत् १९६३ वि० (सन् १९०६ ई०) में इस समाज के प्राणस्वरूप मुख्य कार्यकर्ता लाला रूपचन्द जी का काँगड़ी गुरुकुलोत्सव से लौटते हुए प्लेग से नजीबाबाद में देहान्त होगया। उनके दक्षिण बाहुस्वरूप सहयोगी ला० माधवशरण जी भी इस असार संसार को छोड़ कर चल बसे। पण्डित मुरारीलाल जी और चौधरी रघुनाथसिंह जी मंडी में दूकान बन्द करके अन्यत्र चले गये। इन सबके न रहने पर म० विश्वम्भरनाथ जी और प्रशंसित ला० माधवशरण जी के लघु भ्राता ला० रामशरण जी समाज का कार्य चलाते रहे। तत्पश्चात् म० विश्वम्भरनाथ जी भी धामपुर छोड़ कर कलकत्ता चले गए और एकमात्र ला० रामशरण दास जी समाज के सूत्रधार रह गये। समाज का भारी कार्यभार उनके निर्बल कन्धों के लिए असह्य था, कि नहटौर निवासी डाक्टर बलदेवसहाय जी का सम्वत् १९६३ वि० (सन् १९०६ ई०) में धामपुर में पदार्पण हुआ और आप एक वर्ष वहाँ रह कर फिर अपनी स्थिर सेवा पर चले गए। किन्तु सन् १९११ ई० में आप फिर धामपुर आन विराजे और तब से आपने अपना चिकित्सालय धामपुर में ही स्थापित कर लिया है। आप प्राचीन आयुर्वेद और अर्वाचीन एलोपेथी के विज्ञ वैद्य और दक्ष डाक्टर होते हुए भी प्रकृष्ट प्राकृतिक चिकित्सक हैं तथा अतीव दुःसाध्य और असाध्य रोगों की

चिकित्सा में सिद्धहस्त हैं। कुष्ठसमान दारुण और भयङ्कर रोग के निवारण में जल-चिकित्सा द्वारा आपने साफल्य-लाभ किया है। नांगलसमीपस्थ जालपुरग्राम के ज़मीदार चौ० शिब्बासिंह जी का चिरकालीन कुष्ठ रोग आपने अपनी अमोघ जल-चिकित्सा से नष्ट किया था, जिसके पुरस्कार में उक्त चौ० जी उनको वार्षिक-वृत्ति आजीवन देते रहे। डाक्टर बलदेव सहाय जी योग्य और विचक्षण-चिकित्सक के अतिरिक्त परोपकारी, पब्लिक-सेवक भी हैं। जब से आप स्थिररूप से धामपुर पधारे हैं, तब से आप इस निःसहाय समाज के प्रधान स्तम्भरूप से इसके प्रधान पद पर सुशोभित हैं और आपका अधिकांश समय उसकी संरक्षा और सेवा में ही व्यतीत होता है। उपरिवर्णित खेदावह अभियोग की पैरवी में आपको बहुत दौड़ धूप उठानी पड़ी है। वर्तमान आर्यसम्मेलन के आप प्रमुख कार्यकर्ता हैं और उसके शिविर और मण्डप-निर्माण के संयोजक भी आप ही हैं।

दलितोद्धार आन्दोलन

धामपुर-आर्यसमाज और उसके कर्मण्य प्रधान डा० बलदेवसहाय जी का सब से बड़ा कार्य दलितोद्धार-यज्ञ में मुख्य भाग है। हल्दौरनिवासी कर्मकुशल आर्यवीर श्री पण्डित ठाकुरदास जी ने अपने परिवार से पृथक् रहकर और कार्यतः सामाजिक अभ्युदय से कर्मसंन्यास ग्रहण करके बिजनौर-मण्डलार्योपप्रतिनिधिसभा की संरक्ष-

कता में दलितोद्धार का बीड़ा उठाया हुआ है—ज़िले बिजनौर में सबसे अधिक बसे हुए चमार कहलाने वाले दलित-समुदाय को उसकी छुआछूत दूर कर के वैदिक-धर्म में प्रविष्ट करने के लिए कमर बाँधी हुई है। धामपुर तहसील के ग्रामों को उन्होंने अपना कार्यक्षेत्र बनाकर धामपुर को अपना केन्द्र बनाया हुआ है और धामपुर-आर्यसमाज मन्दिर की एक कोठरी में अपना डेरा डाला हुआ है। इस कार्य में उनको धामपुर-आर्यसमाज और उसके उद्योगी प्रधान डा० बलदेवसहाय जी से असीम सहायता मिली है। इस सहायता के बल से ही वे गोविन्दपुर, सदाफल, पूरनपुर, विशमपुर, सरगथल, बुआपुर, बख़्शनपुर, मनकूहा, नसीरपुर, हर्रा, कागपुर, दहलावाला, जीतनपुर, ख़िज़रपुर नामक इन चौदह ग्रामों में दो सहस्र पच्चीस आत्माओं को वैदिकधर्म का अमृत पान करा चुके हैं। वैदिक-धर्म में प्रविष्ट जनों के सिर से छूत का भूत उतर कर भाग गया है और उनको अपने २ गांवों में सार्वजनिक कूपों (पब्लिक कुओं) पर चढ़ कर और अपने घड़े उनकी मण्डों पर रखकर पानी भरने का पूरा अधिकार मिल गया है। इस काय में जिन संघर्षों का सामना करना पड़ा है, उसका विस्तृत वर्णन बिज-नौर-मण्डलार्योपप्रतिनिधिसभा-प्रयत्नकाल में किया जायगा। उपर्युक्त ग्रामों के नवप्रविष्ट आर्यों की सामाजिक अवस्था शनैः शनैः सुधर रही है और इस कार्य में आर्यजनता जितना अधिक प्रयास उठायेगी, उतना ही अधिक वह उनको समाज

में ऊपर उठाने और उनके आचार उन्नयन का वास्तविक और ठोस काम कर सकेगी।

संपादकाचार्य पं० रुद्रदत्त जी

धामपुर आर्यसमाज के प्रमुख पुरुषों की सूची स्वर्गीय संपादकाचार्य पण्डित रुद्रदत्त जी के नामोल्लेख के बिना अधूरी ही रहेगी। इस लिए उनका संक्षिप्त परिचय यहां दिया जाता है। पण्डित रुद्रदत्त जी धामपुर के बड़ुआ (बाड़व) कुल के अंकुर थे। इस ज़ात वा समुदाय के लोग भिक्षावृत्ति पर निर्वाह करते हैं और उन में साक्षरजन विरले ही पाए जाते हैं। किन्तु पण्डित रुद्रदत्त जी को यह प्रतिष्ठा प्राप्त थी कि वे पण्डित-पिता के पण्डित पुत्र थे। उनके पिता पण्डित काशीनाथ जी भी संस्कृत के कृतविद्य थे और उनके अनुज पण्डित दामोदरदत्त भी देववाणी के विद्वान् थे। पण्डित काशीनाथ जी कथा-वाचन और फलित-ज्योतिष से अपनी वृत्ति चलाते थे। उनके दोनों पुत्र पण्डित रुद्रदत्त और पण्डित दामोदरदत्त ने काशी के सर्व-विजयी, उत्कृष्ट कवि और प्रसिद्ध उद्दण्ड विद्वान पण्डित दुःखभञ्जन जी से शिक्षा पाई थी। इसलिए उन का साहित्य-शास्त्र में अच्छा प्रवेश था। शिक्षा समाप्त करके पं० दामोदरदत्त किसी राज्य में दानाध्यक्ष बन गए थे और ज्येष्ठ भ्राता पण्डित रुद्रदत्त जी ने हिन्दी पत्र-सम्पादन का व्यवसाय ग्रहण किया था। जब उन्होंने हिन्दी पत्र सम्पादन का

कार्य प्रारम्भ किया था, तब हिन्दी पत्रों की कोई प्रतिष्ठा न थी। परिडत रुद्रदत्त जी सुनाया करते थे कि जब उन्होंने सर्वप्रथम कलकत्ते के भारतमित्र का सम्पादन स्वीकार किया था, तो उस समय हिन्दी पत्रों से जनता के विराग की यह अवस्था थी कि वे (परिडत रुद्रदत्त जी) स्वयं ही भारतमित्र में लेख लिखा करते थे और स्वयं ही उस को लोगों को सुनाने जाया करते थे। उनके सम्पादकत्व में भारतमित्र ने बड़ी उन्नति की थी। इस के पश्चात् वे हिन्दी-बङ्गवासी के सम्पादक रहे। हिन्दी के पुराने पत्रों में शायद ही ऐसा कोई पत्र होगा जिस का आप ने सम्पादन न किया हो। हिन्दी-पत्र-सम्पादनकला के वे सचमुच आदि आचार्यों में से थे और इसलिए उनकी सम्पादकाचार्य की पदवी अन्वर्थ ही है। परिडत रुद्रदत्त जी बड़े विनोदी लेखक और वक्ता थे। आर्यसामाजिक साहित्य में उनकी 'स्वर्ग में सबजेक्ट कमेटी' 'स्वर्ग में महासभा' 'कण्ठी जनेऊ का विवाह' तथा 'आर्य मत मार्तण्ड नाटक' हास्यरस की चाशनी होते हुए भी पौराणिक कपोल कल्पना की ढोल की पोल दिखलाने वाली मनोहर लघुपुस्तिकाएँ हैं और उनको हिन्दी गद्य काव्य का सुन्दर उदाहरण कह सकते हैं। परिडत रुद्रदत्त जी यावज्जीवन अपनी वाणी और लेखनी से हिन्दी साहित्य और आर्यसमाज की सेवा करते रहे। 'योग दर्शन' के व्यास-भाष्य का उन्होंने हिन्दी अनुवाद भी किया था, जो मुरादाबाद के वैदिक पुस्तकालय से उपलब्ध हो सकता है।

अपने सम्पादित पत्रों में वे बराबर आर्यसमाज का पक्षपोषण किया करते थे। उन्होंने आर्यसमाज की ओर से अनेक शास्त्रार्थ भी सफलता पूर्वक किए थे । सम्पादनव्यवसाय से विपुल वृत्ति लाभ करते हुए भी वे अपनी मुक्तहस्तता के कारण सदा अर्थ-कृच्छ्रता में ग्रस्त रहते थे। उनका अन्त काल तो अकिंचन और सङ्कटावस्थामें ही कटा था। उनके देहान्त के पश्चात् उनकी विधवा को अपने योगक्षेम के लिए परमुखापेक्षी रहना पड़ा था। खेद है कि हिन्दीसाहित्य के भक्तों और आर्यसमाज के कर्णधारों ने अपने सेवक की सेवाओं की गुणग्राहकता और कृतज्ञता का परिचय न दिया।

नहटौर आर्यसमाज

नहटौर उपनगर, जो कि इसी नाम का परगना भी है, गाँगन नदी के दक्षिण तीर पर, २९° २०' उत्तरीय अक्षांश और ७८° २४' पूर्वीय देशान्तर पर, समुद्र-तल से ७८० फ़ीट की ऊँचाई पर, बिजनौर से १६ मील और धामपुर से ८ मील पर बसा हुआ है। धामपुर से नहटौर तक पक्की सड़क है, जो गाँगन के पुल पर होकर जाती है। नहटौर से बिजनौर, नगीना नजीबाबाद, किरतपुर, दारानगर, चांदपुर और नूरपुर को कच्ची सड़के हैं। हल्दौर उपनगर दारानगर वाली सड़क पर नहटौर से ६ मील है। नहटौर का प्राचीन इतिहास कुछ ज्ञात नहीं है, किन्तु वह इतना पुराना अवश्य है कि वह सं० १६१३ वि०(सन् १५५६) में अकबर के राज्य में इस नाम के परगने का मुख्य स्थान था। उस समय उसके ज़मींदार तगा थे। नहटौर

की जन संख्या पौने बारह सहस्र के निकट है, जिसमें सवा आठ सहस्र के लगभग मुसलमान, प्रायः तीन सहस्र हिन्दु और शेष अन्य मतावलम्बी हैं।

नहटौर में आर्यसमाज का प्रथम सन्देश

नहटौर उपनगर में भी आर्यसमाज का सन्देश धामपुर के तहसीलदार श्री ठा० तुकमानसिंह जी द्वारा पहुंचा था। उक्त ठाकुर जी दृढ़ और उत्साही आर्य थे। वे नहटौर में आकर रायसाहब चौ० चुन्नीसिंह जी के पास, जिनकी आयु उस समय १७ वर्ष की थी, उनके दीवानखाने में ठहरा करते थे। उनसे ही प्रशंसित चौधरी जी को महर्षि दयानन्द-कृत सत्यार्थप्रकाश प्राप्त हुआ था। उसको उन्होंने आर्यसमाज के सिद्धान्तों का खण्डन करने के उद्देश्य से लिया था। उस समय उनको हिन्दी पढ़ने का पर्याप्त अभ्यास न था, इस लिए वे सत्यार्थप्रकाश को किसी ब्राह्मण से पढ़वा कर सुना करते थे और कुछ कुछ स्वयं भी बाँच लेते थे। उसकी एक ही आवृत्ति से उनके विचारों में पूरा परिवर्तन हो गया और वे आर्यसमाज की ओर झुक गए। नहटौर में सब से पहिले आर्य चौ० चुन्नीसिंह जी ही हैं।

बोपदेवकृतत्वांकित श्रीमद्भागवत का काशी में दर्शन

उसक पश्चात् उन क कुटुम्बी बन्धु श्री अनूपसिंह जी के विचार भी परिवर्तित होगए। अपने

विचार परिवर्तन का चौ० अनूपसिंह जी यह कारण बतलाते हैं कि वे अपनी पुत्री के विवाह तिथि के निर्णयार्थ काशी पधारे थे। उनकी पुत्री का विवाह मेरठ ज़िलान्तर्गत हसौड़े के रईस चौ० रघुवीरनारायणसिंह से, जो इस समय कॉंग्रेस और महात्मा गाँधी के अनन्य भक्त हैं, होने वाला था। वर-पक्ष विवाह की किसी एक तिथि पर अड़ा हुआ था और चौ० अनूपसिंह जी कोई दूसरी तिथि चाहते थे। काशी के विद्वानों से उसी का समर्थन प्राप्त करने के लिए वे काशी गए थे। वहाँ उनका कई सप्ताह ठहरना हुआ। उनका कथन है कि काशी में उनकी भेंट एक पुराने पण्डित "भैरोंदत्त" (वस्तुतः भैरवदत्त) से हुई "और उसने मुझ को अपने घर लेजा कर एक भागवत दिखलाई, जो एक पालने में रक्खी हुई थी और चारों ओर इस्तपग़ोल लसा हुआ था। वह ताड़ के पत्रों पर हस्तलिखित थी, वह छापे की भागवत से बहुत छोटी थी, उसके देखने से ज्ञात हुआ कि बोपदेव की बनाई हुई है. जैसा कि स्वामी जी (महर्षि दयानन्द) का वचन था। तभी से मुझे स्वामि जी के वचनों में श्रद्धा हुई और आर्यसामाजिक विचार हुए, यह घटना सन् अठारह सौ पचासी ई० की है"। विनीत लेखक को माननीय श्री चौ० अनूपसिंह जी का यह कथन सन्देह से शून्य प्रतीत नहीं होता जहाँ तक मुझ को ज्ञात है प्रशंसित चौधरी जी को संस्कृत में इतनी गति नहीं है कि वे उक्त पुरानी हस्तलिखित लिपि में भागवत का बोपदेवकर्तृत्व स्वयं बाँच सके हों। पुरानी

चौधरी अनूपसिंह जी रईस नरौरा

पुस्तकों में टाइटल पेज तो होता नहीं, जो उसके ऊपर लिखा हुआ ग्रन्थकर्ता का नाम पढ़ लिया जाय, उनमें तो ग्रन्थके भीतर आदि और अन्त में संस्कृत-वाक्य-रचना में ग्रन्थप्रणेता का नाम सन्निविष्ट होता है, उसको कोई संस्कृतज्ञ ही समझ सकता है।

इसके अतिरिक्त श्रीमद्भागवत के बोपदेव-कर्तृत्व-विवाद का प्रादुर्भाव न केवल महर्षि दयानन्दके प्रादुर्भाव-काल से हुआ है, प्रत्युत वैष्णवों और शाक्तों का यह पुराना कलह-प्रसंग चला आता है कि शाक्त देवीभागवत को वास्तविक भागवत कहते हैं और श्रीमद्भागवत को बोपदेव कृत नवीन भागवत बतलाते हैं तथा वैष्णव लोग श्रीमद्भागवत को ही व्यासकृत वास्तविक भागवत मानते हैं।

यदि बोपदेव कृतत्वाङ्कित भागवत की कोई पुरानी प्रति विद्यमान होती, तो क्या यह संभव था कि बोपदेव-कर्तृत्वपक्ष का कोई समर्थक उस को कहीं अन्वेषण न कर पाता। लण्डन, बर्लिन, पैरिस, माइसोर, ट्रावन्कोर, नैपाल आदि के लाखों हस्तलिखित प्राचीन पुस्तकों से युक्त विशाल पुस्तकालयों और सरस्वतीभण्डारों में उसका

खोज भी न मिलता और यह केवल उक्त "भैरों दत्त" (भैरव-दत्त) जी के भाग्य में बदा था कि उन्होंने उक्त बोपदेवकृत भागवत की प्रति का दर्शन केवल नहटौर-निवासी श्री० चौधरी अनूपसिंह जी को करा पाया। मुझ को ता यही प्रतीत होता है कि किसी बनारसी ठग ने सरल प्रकृति चौधरी जी को चकमा दिया है और उनकी गवेषणा की तृप्ति करके उन के विश्वास-लाभ करने का प्रयत्न किया है। आजकल के शोधकाल में यह सम्भव नहीं है कि एक ऐसे बड़े विवादास्पद विषय का निर्णय किसी अप्रसिद्ध गुमनाम "भैरोंदत्त" के एकान्त में किसी व्यक्ति-विशेष को बोपदेव-कृत कहकर दिखलाए हुए ग्रन्थ की सन्दिग्ध विद्यमानता से हो जाय, वा उस प्रश्न के विपक्षी श्री चौ० अनूपसिंह जी के, चाहे वे कितने ही सम्भ्रान्त और लक्ष्मी के लाल क्यों न हों, किए हुए उसके उक्त अनुवाद वा कथन-मात्र से सत्य-संशोधक ऐतिहासिक उसको सुनिर्णीत मान लेवें।

अस्तु, यह विषय बिजनौर-मण्डल-आर्यसमाज के इतिहास से बहिर्भूत है और यहाँ उस का उल्लेख होने के कारण प्रसङ्गवशात् उस पर ऊपर की पंक्तियाँ लिखनी

पड़ीं। उस पर अपना समालोचनात्मक मत न देकर विनीत लेखक अपने ऐतिहासिक के कर्तव्य से च्युत होता, इसलिए तदर्थ अपने पाठकों से क्षमा प्रार्थना करके प्रकृत विषय को आगे बढ़ाया जाता है।

नहटौर में आर्यपाठशाला की स्थापना

नहटौर में उक्त दोनों महानुभावों के आर्यसिद्धान्त के श्रद्धालु होने के पश्चात्, वहाँ आर्यविद्वानों और उपदेशकों का आगमन होने लगा। पञ्जाब से पण्डित देवीदयालु जी नहटौर पधारे और संयुक्त प्रांतीय आर्यप्रतिनिधिसभा के योग्य उपदेशक पं० गौरीशङ्कर जी का भी वहाँ पदार्पण हुआ।

श्री पण्डित देवीदयालु जी के अध्यापकत्व में उक्त चौधरी महोदयों के विशाल दीवानख़ाने में एक आर्य-पाठशाला की स्थापना हुई, जिसने उस समय के नवयुवकों को आर्य बनाने में बड़ा काम किया।

नहटौर में आर्यसमाज की स्थापना

मिति मार्गशिर सुदि तृतीया शुक्रवार सं० १९४४ वि० तदनुसार १८ नवम्बर सन् १८८७ ई० को उक्त पण्डित गौरीशङ्कर जी की

प्ररणा और उक्त पण्डित देवीदयालु जी के सहोयोग में नहटौर-आर्यसमाज की स्थापना हुई ।

चौधरीअनूपसिंह जी उसके प्रथम प्रधान और चौ० चुन्नीसिंह जी प्रथम मन्त्री नियत हुए । उससे अगले वर्ष यह समाज 'श्रीमती आर्यप्रतिनिधि-सभा, संयुक्तप्रान्त' में प्रविष्ट कराया गया ।

मूर्ति-रहित शिवालय और पौराणिकों का प्रबल विरोध

प्रारम्भ में नहटौर-आर्य-समाजको भी विपत्तियों के प्रबल विरोध का सामना करना पड़ा था । उसका मुख्य कारण यह था कि चौ० चुन्नीसिंह जी के पितामह (बाबा) श्री चौ०भूपसिंहजी ने एक सहस्र रुपए के व्यय से नहटौर में एक शिवालय बनवाया था, किन्तु उसमें शिवलिंग की स्थापना कराए बिना ही वे स्वर्ग सिधार गए थे ।

उक्त शिवालय से ही मिला हुआ एक सुन्दर ठाकुर-मन्दिर वा ठाकुरद्वारा चौ० अनूपसिंह जी ने, अपने आर्य होने से पूर्व अपनी निःसन्तानता के निवृत्यर्थ, निर्माण कराया था । उस के द्वार की लकड़ी की चौखट का सुन्दर काम आज

भी उस मन्दिर के निर्माण में उनके सराहनीय भक्ति-भाव को साक्षी दे रहा है।

उन के आर्य हो जाने पर उनका यह भक्ति-भाव पाषाणमयी मूर्ति से परिवर्तित हो कर निराकार निर्लेप परमात्मा में बद्धमूल हो गया था, इसलिए उन्होंने भी उक्त ठाकुरद्वारे में प्रस्तरप्रतिमा की प्रतिष्ठा का विचार सर्वदा के लिए त्याग दिया।

परिणामतः उक्त शिवालय तथा ठाकुरद्वारा चिरकाल तक उजाड़ और निर्जन दशा में पड़े रहे। उनमें घास फूँस और स्वच्छन्द वृक्ष उग कर और बढ़ कर बन का दृश्य दिखलाने लगे और बहुत दिनों तक दिवाभीत तथा लम्पट लोगों के शरणस्थान बने रहे।

इधर उक्त चौधरी महानुभावों का परिवार आर्यधर्म प्रचार में प्रचुर प्रयत्न करने लगा। उन के तथा अन्य आर्यों के परिवार में संस्कार वैदिक रीति से होने लगे। कोकापुर ग्राम के किसी नवमुस्लिम भूतपूर्व पृथ्वीसिंह जाट और तदनन्तर धर्मभ्रष्ट द्वारकाप्रसाद वैश्य की शुद्धि भी उन्होंने की। ये शुद्धियां शायद इस ज़िले में सर्वप्रथम थीं।

इन सब कार्यों ने पौराणिक पुरुषों की विरोध-वह्नि को भड़काने के लिए वात्या (आन्धी) का काम दिया। उन के विरुद्ध एक महज़रनामा (प्रतिज्ञापत्र) तैयार किया गया। उस पर ज़िले के बड़े बड़े उलूक-वाहना के कृपापात्र पौराणिक-पुङ्गवों (ज़िले भर के रईसों) के हस्ताक्षर इस प्रतिज्ञा में आबद्ध रहने के लिए कराए गए कि वे आयु भर उक्त चौधरी महोदयों का छुआ हुआ कोई भोज्य पदार्थ ग्रहण न करेंगे।

श्री चौ० अनूपसिंह जी के शब्दों में "हल्दौर के रईस कुँवर बुधसिंह तथा उनके सुपुत्र राजा हरवंशसिंह ने सारी आयु हमारे (चौधरी महाशयों के) यहाँ का पान तक नहीं खाया"।

विनीत लेखक ने भी इस प्रतिज्ञा की साभिमान अनुवृत्ति स्वयम् उक्त श्री राजा हरवंशसिंह जी के मुखारविन्द से अपने कानों सुनी थी। किन्तु "सबै दिन जात न एक समान" उक्त चौधरी महोदयों की धर्म्मार्थ सामाजिक-अत्याचार-सहिष्णुता अपना फल लाई। आज उनके विरोधी परिवारों में भी वैदिकधर्म की फुलवारी फूल फल रही है।

नहटौर-आर्यसमाज के संयुक्त प्रान्तीय आर्य-प्रतिनिधि सभा में प्रविष्ट हो जाने पर श्री चौ० चुन्नीसिंह जी ६ वर्षों तक और श्री चौ० अनूपसिंह जी एक वर्ष तक उक्त सभा की अन्तरङ्ग सभा के सदस्य रहे थे।

श्री चौ० अनूपसिंह जी ने उक्त सभा के उपप्रधान पद की भी शोभा सन् १८६६ ई० में उस वर्ष बढ़ाई थी, जब पवाँया (ज़ि० शाहजहाँपुर) के राजा फ़तहसिंहजी उक्त सभा के प्रधान थे। जब उक्त सभाके आधीन संयुक्तप्रान्त में वेद-प्रचार की स्थापना हुई थी, तो आप दोनों महानुभाव उस के समर्थकों में से थे।

नहटौर की उक्त आर्यपाठशाला के बन्द होजाने पर उसके अवशिष्ट कोश और उक्त चौधरी घराने के विविध शुभ अवसरों पर दिए हुए दान का योग लगभग चार सहस्र रुपया, मुरादाबाद में उक्त वेदप्रचार के पूर्व रूप में स्थापित, 'वेद-प्रचार-प्रेरक-कमेटी' को, जिस के मन्त्री श्री मुंशी नारायणप्रसाद जी (वर्तमान श्री नारायण स्वामी जी) थे, दिया गया था।

अन्यान्य संस्थाओं के लिए भी विविध अवसरों पर

उक्त चौधरी परिवार की वदान्यता विख्यात रही है। बिजनौर-आर्यसमाज-मन्दिर के मोल लेते समय नहटौर-समाज ने १७००) दान दिया था और मुरादाबाद-आर्यसमाज-मन्दिर की ख़रीदारी में भी विपुल धन-राशि के दान से सहायता की थी। बिजनौर-आर्यसमाज-मन्दिर का कुआ भी चौधरी चुन्नीसिंह जी के ज्येष्ठ भ्राता स्वर्गीय चौधरी हरिसिंह जी का बनवाया हुआ है। काँगड़ी गुरुकुल का विशाल सिंहद्वार, वृन्दावन गुरुकुल में एक कमरा और श्रीमद्दयानन्द-ऐंग्लो-वैदिक कालेज लाहौर के दो कमरे भी श्री चौ० चुन्नीसिंह जी की उदारता और दान-शीलता का परिचय दे रहे हैं।

उक्त चौधरी महोदय सामाजिक सुधारों में भी पश्चात्पद नहीं रहे हैं। तगा (दानत्यागी ब्राह्मण) समुदाय में सब से प्रथम विधवा के पाणिग्रहण करने का साहस श्री चौ० (अब रायसाहब) चुन्नीसिंह जी ने ही किया था।

उन की प्रथम धर्मपत्नी का देहान्त १६ सितम्बर सन् १९०३ ई० को हुआ था और ८ अप्रैल सन् १९०६ ई०

राय साहिब चौधरी चुन्नीसिंह जी रईस नहटौर

को उन्होंने देहली के चौ० मामराजसिंह जी की विधवा पुत्री श्रीमती ज्वालादेवी से पुनर्विवाह किया, जिसपर प्रबल विरोध उठा था।

उनकी यह पुनःपाणिगृहीता पत्नी श्रद्धा-सम्पन्ना और धर्मपरायणा देवी थीं। खेद है कि उक्त महोदय के भाग्य में उनका सहवास अधिक न बदा था और पुनर्विवाह से थोड़े दिनों पीछे उन का मुरादाबाद में देहान्त हो गया था।

नहटौर-आर्यसमाज और उस के प्राणस्वरूप उक्त चौ० घराने की धर्म-निष्ठा से आकृष्ट होकर आर्यसमाज के अग्रणी, बड़े २ व्याख्याता, महोपदेशक और प्रकाण्ड पण्डित नहटौर में पधारते रहे हैं।

ज्येष्ठ शहीद पण्डित लेखराम जी आर्यमुसाफ़िर, तार्किक-शिरोमणि श्री स्वा० दर्शनानन्द जी, वाग्मिवर श्री स्वामी पण्डित गणपति शर्माजी, तितिक्षा-मूर्ति श्री० स्वामी सर्वदानन्द जी, त्याग-प्रतिमा श्री म० हंसराज जी आदि महानुभाव अपने पदार्पण और व्याख्यानों से नहटौर को पवित्र कर चुके हैं।
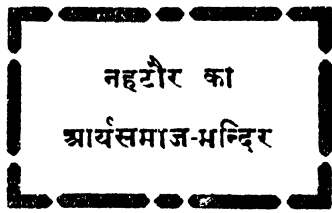
नहटौर का आर्यसमाज-मन्दिर

जैसा कि ऊपर वर्णन हो चुका है चौधरी महोदयों के निर्मित शिवालय और ठाकुरमन्दिर बहुत काल तक मूर्ति-रहित, निर्जन स्थान पड़े रहे।

चिरकाल पश्चात् ये मन्दिर नहटौर-आर्यसमाज के अधिकार में दे दिये गए और उसने उन को स्वच्छ कराकर तथा सुधरवा कर आर्यसमाजमन्दिर के रूप में परिणत कर लिया। इस स्वच्छता और सुधार के कार्य में रायसाहब चौ० चुन्नीसिंह जी के सुपुत्र चौ० धर्मवीरसिंह जी ने विशेष भाग लिया था। जो स्थान शिवलिङ्ग की स्थापना और जलहरी के लिए बना था, उस में यज्ञकुण्ड बना दिया गया। जिन स्थानों में घण्टे घड़ियाल और झाँझ बजते, वहाँ अब वेद-मन्त्रों की मनोहर पवित्र ध्वनि सुनाई देती है। जहाँ शिवलिंग पर जल लुढ़ाया जाता, वहाँ अब अग्नि में सुगन्धित द्रव्यों का हवन होता है।

नहटौर-आर्यसमाज का यह मन्दिर इस समय १५ सहस्र रुपए मूल्य का समझा जाता है।

और श्री चौ० अनूपसिंह जी नहटौर-आर्यसमाज के प्राण-स्वरूप हैं।

नहटौर-आर्यसमाज के विशेष कार्यकर्त्ता

जैसा कि ऊपर वर्णन हो चुका है रायसाहब चौ० चुन्नीसिंह जी और उनके भतीजे चौधरी बलवन्तसिंह जी, जो संप्रति इस समाज के प्रधान हैं, धर्म के श्रद्धालु और सरलप्रकृति के पुरुषरत्न हैं।

चौधरी परिवार के अन्य जन भी आर्यसमाज के प्रेमी हैं। नहटौर-आर्यसमाज अधिकांश चौधरी परिवार से ही सङ्गठित है।

पण्डित लक्ष्मीनारायण जी उपाध्याय हेड मुदर्रिस नहटौर मिडिल स्कूल भी, जो आजकल इस समाज के मन्त्री हैं, बड़े उद्योगी और उत्साही कार्यकर्त्ता हैं। मथुरा की गत श्रीमद्दयानन्दजन्मशताब्दीसमारोह के अवसर पर के नगर-कीर्त्तन में, जो बिजनौर ज़िले के यात्री दलने प्रसिद्धि प्राप्त की थी, उसका बहुत कुछ श्रेय प्रशंसित पण्डित जी को ही है।

इस ज़िले के उस कीर्तनदल के अग्रणी आप ही थे। नहटौर में आपने एक प्रेमपुस्तकालय भी स्थापित किया हुआ है, जो नवयुवकों में पुस्तक और पत्र-पाठ का अनुराग उत्पन्न कर रहा है।

नहटौरआर्यसमाज की सदस्य संख्या ४० है। उस के मासिक चन्दे का योग ५) है। प्रत्येक सदस्य से =) मासिक नाम मात्र चन्दा लिया जाता है। परन्तु आवश्यकतानुसार प्रति वर्ष यथावसर विपुल धनराशि संग्रह कर के सामाजिक कार्यों में व्यय की जाती है।

चाँदपुर आर्यसमाज।

चांदपुर उपनगर, जो कि इस नाम के परगने का मुख्य नगर है, २९°८′ उत्तरीय अक्षांश तथा ७८°१६′ पूर्वीय देशान्तर पर, बिजनौर से २१ मील दक्षिण-पूर्व को स्थित है। एक कच्ची सड़क और ईस्ट इंडियन रेलवे की गजरौला मुअज़्ज़मपुर नारायण शाखा चाँदपुर से बिजनौर को जाती है। और भी कई सड़कें यहाँ आनकर मिलती हैं, जो उत्तर में हल्दौर को उत्तर-पूर्व में नहटौर को, पूर्व में नूरपुर को, दक्षिणपूर्व में अमरोहे को, दक्षिण में धनौरे को दक्षिण-पश्चिम में बास्टे को, और पश्चिम में गंगा के घाट ज़ाफ़रावाद को जाती हैं। चाँद-पुर का पुराना इतिहास बहुत कम ज्ञात है, किन्तु अकबर के काल में यह एक समृद्ध उपनगर था और संभल की सरकार के अधीन, परगने का मुख्य स्थान और दस्तूर भी था। सन् १८०५ ई० में वह पिण्डाँरियों के अधिकार में रहा और सन् १८५७ ई० के सैन्य-विद्रोह में मुसलमानों ने उस पर अपना अधिकार जमा लिया था। अंगरेज़ी राज्य के प्रारम्भ से सन् १८९४ ई० तक चाँदपुर अपने नाम की तहसील का मुख्य स्थान रहा, किन्तु पीछे से वहाँ की तहसील तोड़ दी गई। चाँदपुर की मनुष्य गणना साढ़े बारह सहस्र के लगभग है, जिनमें प्रायः ३॥ सहस्र हिन्दू ९ सहस्र मुसलमान और शेष जैन, ईसाई, आर्य और सिक्ख हैं। चाँदपुर चारों ओर छोटे-छोटे तालाबों से घिरा है, जिनमें उत्तर और पूर्व में 'सतारा' और

पश्चिम-दक्षिण के वसीकृत के बरसात बहाव को लेने वाला 'चिम्मनलाल' ये दो तालाब प्रसिद्ध है। चाँदपुर में सप्ताह में दो पैंठ लगती हैं और अन्न, शक्कर, तेलहन और तम्बाकू का मुख्य व्यापार होता है। चाँदपुर के शिल्प में मिट्टी के हुक्के सुराहियाँ, कपड़े के गाढ़े और बिछाने की चौतइयाँ प्रसिद्ध हैं। यहाँ एक अंगरेज़ी स्कूल, एक भाषा का मिडिल स्कूल और तीन प्रारंभिक सहायता-प्राप्त स्कूल हैं। नगर की सफ़ाई आदि का प्रबन्ध नगर-परिषद् (Municipality) द्वारा होता है।

आर्य्य धर्म का प्रवेश।

चाँदपुर में आर्यसमाज के प्रवेश की कथा इस प्रकार है कि १८६० ई० में एक कट्टर आर्यसमाजी चौकीदार चौ० बहालसिंह बदलकर चाँदपुर में आए। उक्त महाशय को प्रति रात्रि नगर में चौकीदारी के फेरी के लिए घूमना पड़ता था। उनको आर्यसमाज के प्रचार का इतना व्यसन था कि चौकीदारी के "सोने वालो, जागते रहो" के उद्देश्य (आवाज़ लगाने) के पीछे आप आर्यसमाज के भजन गा गाकर लोगों को सुनाते रहते थे। "उलटे मारग में चलकर हम दुःख उठावें, क्या मतलब" यह आर्यसमाज के पुराने भजनीक चौ० नवलसिहजी की लावनी की टेक रात्रि के सन्नाटे में, जागने वालों के कानों में पड़कर सीधी उनके हृदय में प्रवेश करती थी। उस समय उन भजनों को सुनने के

अनिच्छुक भी उनको सुनने के लिए बाधित होकर उन पर विचार करने को विवश होते थे। चाँदपुर के एक ला० श्रीराम गोले पूर्व आर्यसमाज के प्रबल विरोधी और कट्टर हिन्दू थे। उन्होंने चौ० बहालसिंह से कहा था कि यदि उसने उनके मकान के पास रुक कर भजन गाया, तो उसका सिर फोड़ दिया जायगा। किन्तु बहालसिंह ने यह दृढ़ संकल्प कर लिया कि किसी दिन इन्हीं ला० श्रीराम गोले को आर्य बनाऊँगा और इसके लिए वे प्रति रात्रि भजन गाने का क्रम इस प्रकार चलाते रहे कि उनके निवास से दूर भजन प्रारंभ करके उसको गाते हुए शनैः शनैः उनके घर के चबूतरे पर पहुंच जाते और वहाँ बैठ कर भजन गाने लगते। इसका प्रभाव यह हुआ कि आर्यसमाज के घोर विरोधी ला० श्रीराम गोले का वही चबूतरा आगे चलकर चाँदपुर के आर्यसमाज के साप्ताहिक अधिवेशनों का स्थान बन गया। म० बहालसिंह के भजनों का ला० श्रीराम पर गहरा प्रभाव पड़ा और उन्होंने आर्यसमाजी बनकर वह चबूतरा उक्त कार्य के लिए दे दिया।

इसके पश्चात् सं० १९४८ वै० (सन् १८९१ ई०) में हरिद्वार के कुम्भ के मेले पर चाँदपुर निवासी पं० शंकरलाल जी तथा ला० श्रीरामजी गए, वहाँ उन्होंने वैदिक धर्म का प्रचार श्रवण किया और वे अपने आर्यसामाजिक विचारों को दृढ़ करके वहाँ से घर लौटे। चाँदपुर में म० बहालसिंह चौकीदार के रात्रि के प्रचार ने पूर्व ही बहुत से लोगों के विचारों में परिवर्तन उत्पन्न करके उनको आर्यसमाज का प्रेमी बना दिया

था। पं० शंकरलाल और म० श्रीराम ने हरिद्वार कुम्भ से लौटकर उन लोगों को मिला कर चाँदपुर आर्यसमाज का संगठन करने का संकल्प किया और मिति ज्येष्ठ पूर्णिमा सं० १९४८ वै० (१८९१ ई०) को आर्यसमाज चाँदपुर की स्थापना की। ला० गौरीलालजी उसके प्रथम प्रधान, पं० शंकरलालजी प्रथम मन्त्री, ला० गणपतरायजी प्रथम कोषाध्यक्ष और ला० श्रीरामजी गोले प्रथम पुस्तकाध्यक्ष निर्वाचित हुए। चौ० ज्वालासिंह जी, चौ नानकचन्दजी, ला० गुलाबरायजी, उक्त चौ० बहालसिंहजी चौकीदार बख़्शी शेरसिंहजी तथा ला० मुरलीधरजी उसके सदस्य बने। नहटौर-आर्य-कन्या-पाठशाला के अध्यापक पंजाब-प्रांतीय पं० देवीदयालुजी ने भी इस समाज की स्थापना और संरक्षा में प्रबल उद्योग किया था। आप एक वर्ष तक प्रतिसप्ताह प्रति ऋतु में चाँदपुर पधार कर चाँदपुर-आर्यसमाज के साप्ताहिक अधिवेशन की कार्यवाही कराते रहे थे। अन्य स्थानों के समान चांदपुर के आर्य पुरुषों का भी पौराणिक-भाइयों के अत्याचार, कुवाच्य-बाणवर्षण, बिरादरी के बहिष्कार आदि सभी कष्ट धैर्य-पूर्वक सहन करने पड़े थे। इन सब कष्टों को सहते हुए वे बराबर प्रचार-कार्य करते रहे।
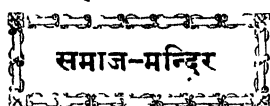
समाज-मन्दिर

आर्यसमाज के साप्ताहिक अधिवेशन प्रथम कई वर्षों तक उक्त ला० श्रीरामजी गोले के स्थान पर होते रहे। तत्पश्चात् प्रचार-कार्य के सौकर्य के लिए बाज़ार में ला० द्वारिकादासजी की दूकान

पर साप्ताहिक अधिवेशन होने लगे। उनमें उपस्थिति दर्हर्ता देख आर्यसमाज–मन्दिर के लिए एक मकान भी खरीदा गया। इसी अवसर पर आगरे के श्री पं० भोजदत्तजी आर्यमुसाफ़िर का चाँदपुर में आगमन हुआ और उनके मौहम्मदी मत की समालोचना–विषयक व्याख्यानों ने जनता को अपनी ओर अधिक आकृष्ट किया। उक्त पंडितजी की अभ्यर्थना पर वर्तमान रायसाहब बा० मक्खनलाल जी ने एक मकान समाज को दान दिया और उक्त मकान के दानपत्र की रजिस्ट्री २१ दिसंबर सन् १९१४ ई० को आर्य–प्रतिनिधिसभा संयुक्त प्रान्त के नाम करा दी। उक्त स्थान नगर से बाहर होने के कारण समाज के लिए उपयुक्त न था। इसलिए कुछ समय पश्चात् एक भवन बस्ती के भीतर एक सहस्र रुपये में मोल लिया गया। इसी भवन के बराबर में १६ सौ रुपए मूल्य का एक दूसरा स्थान ला० माधोप्रसादजी ने समाज को छः सौ रुपये अपने दातव्य ऋण के इस समाज से लेकर उसको दान कर दिया, अर्थात् उक्त लालाजी ने इस स्थान के रूप में एक सहस्र रुपया समाज को दान दिया। उक्त दोनों स्थानों को मिलाकर समाज का वर्तमान मंदिर निर्माण कराया गया, जिसकी लागत लगभग बीस सहस्र रुपया है। राय मक्खनलालजी का प्रदत्त एक अन्य स्थान भी चिना जारहा है, उसकी लागत भी इस समय दो सहस्र रुपए के लगभग है।

पुस्तकालय

आर्यसमाज के पुस्तकालय में प्राय. ६०० पुस्तकें लगभग ६००) रु० मूल्य की हैं।

उनमें क़ुरान शरीफ़ की एक प्रति विशेषतः उल्लेखनीय है। उसका आकार लगभग एक गज लम्बा और आधा गज़ चौड़ा है। वह बहुत पुरानी है और कई तफ़सीरों (भाष्यों) से युक्त है। उसमें उसकी प्रत्येक आयत पर पाठ-प्रकार भी अंकित है। यह प्रति बिजनौर-मण्डलार्योपप्रतिनिधि सभा के उपदेशक पं० रामचन्द्रजी आर्यमुसाफ़िर ने एक वैश्य के यहाँ से प्राप्त की थी, जहाँ वह ३० वर्ष से गिरो (निक्षेप) रक्खी हुई थी।

चाँदपुर आर्य-समाज का वल्मीकों के दलित-समुदाय में कार्य और ईसाइयों तथा उनके प्रसिद्ध प्रचारक पादरी ज्वालासिंह से संघर्ष।

चाँदपुर आर्यसमाज ने बिजनौर आर्योपप्रतिनिधि सभा के उपदेशक (अब काव्यतीर्थ) श्री पं० बिहारीलाल जी तथा असगरीपुर निवासी स्वर्गीय पं० प्रेमशंकरजी के नायकत्व में चाँदपुर के दलित बाल्मीकी वर्ग (भंगियों) में ईसाइयों के पंजे से उनके उद्धार और उनके स्पर्शास्पर्श की मिथ्या भावना को भगाने के लिए, अपूर्व आन्दोलन किया था। ईसाई लोगों ने उनको अपना स्वादुग्रास बनाया हुआ था। चाँदपुर की आर्य मंडली उपरि-प्रशंसित उपदेशकों को लेकर उनके घर पहुँची, जहाँ ईसाइयों ने अपने बाज़ की बड़ी मजलिस जमाई हुई थी और पादरी ज्वालासिंह और बिजनौर ज़िले के पादरी सीट आदि दल बल सहित डटे हुए थे। आर्यगण भी वहाँ उन्हीं के कुर्सी

मूढ़ों और फर्श पर जा विराजे। पादरियों की वाद्पटुता की वहाँ धाक बैठी हुई थी, परंतु पं० बिहारीलालजी काव्यतीर्थ के व्याख्यान को सुनकर और उनकी वाग्मिता को अनुभव करके वे भी दंग रह गए। भंगियों और उनके गुरु साधु चुन्नीलाल पर भी उसका पूरा प्रभाव पड़ा और वे अपने आपको आर्य-संतान और राम कृष्ण का अनुयायी अनुभव करने लगे।

दूसरे दिन पादरियों ने तहसील के पुराने भवन में सभा करके आर्यसमाज को शास्त्रार्थ के लिए आवाहन किया। पं० बिहारीलालजी ने वहीं पहुंच कर उनसे तर्क-वितर्क किए। इसका जनता पर प्रबल प्रभाव पड़ा और सारे ज़िले में इसकी ऐसी धूम मच गई कि ईसाइयों ने, जो नए पक्षी अपने जाल में फंसाए थे, उनमें से अधिकांश उड़ गए और इस ज़िले की सन् १९११ ई० की मनुष्य गणना में जो ईसाइयों की मनुष्य-संख्या तीन सहस्र दिखलाई गई थी, वह अगली सन् १९२१ ई० की मनुष्य-गणना में आधी ही अर्थात् डेढ़ सहस्र के लगभग रह गई। आर्यसमाज की इस सफलता का लोहा सन् १९२१ ई० की मनुष्य-गणना के सुपरिन्टेन्डेन्ट को भी अपनी रिपोर्ट में इन शब्दों में मानना पड़ा कि आर्यों के उद्योग से ईसाइयों की संख्या पूरी नहीं लिखी गई जिसका परिणाम यह हुआ कि ज़िले में ईसाइयों की संख्या सन् १९११ ई० की मनुष्य गणना से इस मनुष्य-गणना में लगभग आधी रह

गई और उन्होंने उसको जान बूझ कर कम करा दिया है, परन्तु यह उनका कोरा भ्रम था। वस्तुतः ईसाई प्रचारक ही ईसाइयों की कृत्रिम संख्या लिखने के लिए यह षड्यन्त्र रचा करते थे कि भंगी आदि अनजान दलित समुदाओं को ईसाई शब्द अंकित पर्चियाँ यह कह कर बाँट देते थे कि यह सरकार ने भेजी हैं, जिस समय मनुष्य गणना करने वाला आए इनको उसको दे देना। वह इनको देखकर तुम्हारी गणना के विषय में सब बातें लिख लेगा और तुमको कुछ बतलाने का कष्ट न उठाना पड़ेगा। बिजनौर मण्डलार्योपप्रतिनिधि सभा के पं० बिहारीलालजी और पं० प्रेमशंकर जी आदि उपदेशकों ने इन अनभिज्ञ और दीन दलितों के पास, उन पर्चियों को देख कर, उनको वास्तविक बात बतलाई और ईसाइयों की अभिसंधि समझाई, तो उन्होंने उन पर्चियों से कुछ काम न लिया और अपना वास्तविक धर्म गणना करने वालों को लिखा दिया। शायद इसी उद्योग को लक्ष्य करके मनुष्य गणना के सुपरिन्टेन्डेन्ट महोदय ने आर्यों पर ईसाइयों की संख्या कम करा देने का आरोप लगाया है, जो सर्वथा मिथ्या है।

चाँदपुर आर्यसमाज के विशेष कार्यकर्ता तथा उनके अनुकरणीय कार्य।

१—स्वर्गीय चौ० ज्वालासिंह जी चाँदपुर में आर्यसमाज के सच्चे भक्त और वीर सैनिक थे। आपने अपने पुत्र म० (अब मास्टर) रामस्वरूप जी (गर्म)

आर्योपदेशक पं० बिहारीलाल जी काव्यतीर्थ

वीर चौ० ज्वालासिंह जी चाँदपुर निवासी

का विवाह ऐसे कुल में किया था, जो उस समय जात बिरादरी से खारिज था। इस पर आपको अपनी तमा बिरादरी का बहुत विरोध सहना पड़ा था। आपकी निर्भीकता और वीरता की भी एक घटना चाँदपुर में अब तक प्रसिद्ध है—

एक बार अक्टूबर सन् १९०७ ई० की दिवाली के अन्धेरे में चाँदपुर के एक बड़े साहूकार ला० रामप्रसाद के घर एक बड़ा डाका चढ़ आया था। ला० रामप्रसाद ने किसी प्रकार छतपर पहुंच कर सहायता के लिए कोलाहल मचाया, और तो कोई सहायता को न पहुंचा. पर वीर ज्वालासिंह अपना लठ लेकर डाकुओं के सामने अकेले जा डटे और अकेले ही बहुत देर तक २५–३० सशस्त्र डाकुओं से लोहा लेते रहे। डाकुओं ने आर्यवीर पर धारदार बल्लम से धावा किया, किन्तु परमेश्वर की महिमा धन्य है कि आर्य-वीर के पेट पर लक्ष्य करके चलाए हुए बल्लम का वार उसकी जेब में पड़े हुए रुपयों के बटुए पर पड़ा और उसको भारी आघात न पहुंचा। अन्त में डाकुओं की इतनी संख्या के सामने एक चौधरी ज्वालासिंह की क्या चलती, उसके शरीर पर लाठियों के इतने आघात आए कि वह अकड़ कर भूमि पर गिर गया। डाकू भी अपने घर को भाग गए। चौ० ज्वालासिंह को उठाकर उनके घर लाया गया, किन्तु ला० रामप्रसाद् साहूकार ने, जिसके लिए उन्होंने यह सारी आपत्ति झेली थी, उनके घर आकर इनसे समवेदना तक प्रकट करने

का कष्ट न उठाया। वीर चौ० ज्वालासिंह का चित्र इस ग्रन्थ में अन्यत्र दिया गया है।

२—म० रामशरणजी आर्य्यसमाज चाँदपुर के मुख्य स्तम्भ हैं। आपने समाज-सुधार और आर्य-धर्म-प्रचार में अनेक अत्याचार सहे हैं। जिस समय विधवा-विवाह का आन्दोलन आरंभ ही हुआ था और विधवा से पुनर्विवाह करने वाला कोई विरल साहसी ही आगे आता था, तब चाँदपुर में म० रामशरणजी ने सब से प्रथम इस ओर अपना पग बढ़ाया था और आगरा-निवासी पं० ताराचन्द्र जी की विधवा पुत्री श्यामदेवीजी का पुनः-पाणिग्रहण किया था। इस विवाह में पं० कृपारामजी (पश्चात् सन्यासी स्वा० दर्शनानन्द जी), आगरे के बा० श्रीरामजी (वर्तमान मुख्याधिष्ठाता गुरुकुल वृन्दावन) तथा ताजपुर निवासी स्वर्गीय पं० मुकुन्दरामजी का मुख्य उद्योग था।

३—चांदपुर समाज के वर्तमान प्रधान ला० बैजनाथजी माहेश्वरी तथा मन्त्री ला० रामस्वरूपजी माहेश्वरी तथा उप-मन्त्री ला० छेदालालजी भी अपनी धर्म-श्रद्धा और सदुद्योग के लिए प्रशंसनीय हैं। उनके प्रयत्न से चांदपुर आर्य्यसमाज को २००) वार्षिक आय मंडी से होजाती है, जिससे इस समाज का कार्य्य निर्वाह होता है।

४—आर्य्यसमाज, चांदपुर के एक चमकते हुए नक्षत्र मास्टर रामस्वरूपजी गर्म भी हैं। आप दृढ़ उत्साही और

सदाचारी आर्य हैं तथा सम्प्रति चांदपुर वर्नाकुलर-मिडिल स्कूल के मुख्याध्यापक हैं। आप उर्दू के अच्छे कवि हैं और आपकी कविताएं स्वदेश-भक्ति और धर्म प्रेम के रंग में रंगी हुई होती हैं।
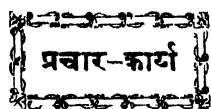
प्रचार-कार्य

चांदपुर आर्यसमाज ने अपने नगर और चारों ओर के ग्रामों में मौखिक धर्मोपदेश और पौराणिक तथा मुसलमानों से शास्त्रार्थों द्वारा धर्म-प्रचार का भारी कार्य किया है। इसके अतिरिक्त उसने फीने की नौमी के मेले में प्रारंभ में कई वर्षों तक ससमारोह प्रचार किया था और उसमें उसको मेले के ज़मीदार चौधरी किड्ढासिंह के प्रबल विरोध का सामना करना पड़ा था, किन्तु उसके प्रचार परिश्रम और वैदिक धर्म की महिमा का उक्त ज़मीदार महाशय पर ऐसा प्रबल प्रभाव पड़ा कि अब कई वर्षों से वे स्वयं उक्त मेले में आर्यसमाज का प्रचार फीना आर्यसमाज के सहयोग से कराते हैं।

---*---

शेरकोट आर्यसमाज।

शेरकोट एक बिखरी हुई बड़ी बसीकत का उपनर है, बिजनौर से २८ मील और धामपुर से उत्तर पूर्व को ४ मील २९°, १९′ उत्तरीय आक्षांश और ७८°, ३४′ पूर्वीय देशांतर पर खोह नदी के ऊंचे वामतीर पर बसा हुआ है। उसमें

होकर धामपुर से अफ़ज़लगढ़ को सड़क जाती है, जो कि रामगंगा के, नौकाओं के, पुल को पार करती है। यहां से उत्तर पश्चिम में नगीना को और पूर्व में काशीपुर को भी सड़कें जाती हैं।

शेरकोट का नाम देहली के बादशाह शेरशाह सूर के नाम पर रक्खा गया है और उसके शासनकाल (सन् १५४० ई० से सन् १५४५ ई० तक) और अकबर के राज्य (सन् १५५६ ई० से सन् १६०५ ई० तक) में यह उपनगर इस नाम के परगने का मुख्य स्थान था। सन् १७४८ ई० में इसपर सफ़दरजंग ने अपना अधिकार जमा लिया था और सन् १७७४ ई० में वह फिर अवध के नबाव वज़ीर के हाथ में आगया था। अंगरेज़ों को ज़िले बिजनौर के प्रदान के ४ वर्ष पश्चात् सन् १८०५ ई० में इस उपनगर को अमीरखां पिण्डारी ने घेरा डाल कर लूटा था। सन् १८४४ ई० में तहसील का मुख्य स्थान शेरकोट से धामपुर हटा दिया गया और शेरकोट का महत्व बहुत कुछ जाता रहा। सन् १८५७ ई० के सैन्य-विद्रोह में यहां राजभक्त हिंदुओं और विद्रोही मुसलमानों के मध्य में बहुत संघर्ष हुआ था और सुप्रसिद्ध माड़ेखाँ के हाथ से बहुत हानि पहुंची थी। शेरकोट की जनसंख्या पन्द्रह सहस्र के लगभग है, जिसमें से पौने ग्यारह सहस्र के लगभग मुसलमान और चार सहस्र के निकट हिन्दु हैं और शेष अन्य धर्मावलम्बी (जैन, ईसाई और आर्य) हैं। इस उपनगर में ८ मोहल्ले हैं, जिनमें से

तीन शेरकोट ख़ास, फ़रीदनगर वा क़िला और कोटरा केन्द्र-त्रिभाग में है, शेष मौहल्ले उनसे कुछ दूरी पर आपस में भी एक दूसरे से दूर-दूर बसे हुए हैं। शेरकोट सुन्दर लिहाफ़, और बिछौने और रजाइयों की छपाई के शिल्प के लिए सुप्रसिद्ध है। यहां एक सहायता प्राप्त देशी भाषा का मिडिल स्कूल, और तीन सहायता प्राप्त बालक-पाठशालाएँ और दो कन्या पाठशालाएँ हैं।

शेरकोट में आर्यसमाज का संदेश कब पहुंचा, इसका निश्चित वृत्तांत संप्रति अप्राप्य है। हां इतना ज्ञात है कि यहां सन् १९०१ ई० से पूर्व एक पुराने और साक्षर आर्य पुरुष पं० हरवंशलालजी विराजमान थे। संभव है कि उनके विचारों से सहानुभूति रखने वाले और भी कोई पुरुष उनके सहयोगी हों। परन्तु नियमित समाज-स्थापना का कोई वर्णन अब उपलब्ध नहीं है।

उपर्युक्त पं० हरवंशलाल जी के उद्योग से शेरकोटमें ता० १-२-३ जनवरी सन् १९०१ ई० को एक आर्यधर्म-प्रचारोत्सव रचा गया था। उसमें विनीत लेखक भी उपस्थित था। उस अवसर पर आर्यसमाज और धर्मसभा के पण्डितों का एक शास्त्रार्थ वा विवाद भी हुआ था। उसमें आर्यसमाज के सिद्धांत के समर्थन के लिए साम-वेदादि-भाष्यकार पं० तुलसीरामजी तथा नायक नंगला निवासी पं० पद्मसिंह जी शर्मा और धर्मसभा के पक्ष-पोषणार्थ नगीने के समीप-

वर्ती ग्राम मोथेपुर निवासी पं० बिहारीलाल, जो अपने को व्याकरण केसरी के नाम से विख्यात करते थे और अपने को काशी के प्रसिद्ध विद्वान् पं० शिवकुमार का शिष्य बतलाते थे, बरेली के पं० गोविन्दराम, देहली के पं० रामचन्द्र वेदांती तथा नगीना समीपवर्ती किरतपुर ग्रामवासी एक नवयुवक मुरारिदत्त, जो अपने आपको ब्रह्मचारी कहकर बुलाता था, और ब्रह्मचारी-वेष में रहता भी था और इस समय दृढ़ आर्यसमाजिक ऐम. जे. शर्मा के नाम से मदुरा (मदरास) में आर्यसमाज का प्रचारक है, आये हुए थे। प्रथम कुछ पत्र-व्यवहार चलता रहा, फिर मुं०जयविहारीलालजी रईस शेर-कोट की कोठी के प्राङ्गण में शास्त्रार्थ-सभा एकत्रित हुई। पं० बिहारीलालजी ने उठकर अनर्गल संस्कृत-भाषण करना प्रारंभ किया और पं० तुलसीरामजी को "अर्थवद्धातुरप्रत्ययप्राति-पदिकम्" इस पाणिनीय सूत्र की व्याख्या के लिये आह्वान करते हुए एक ही वाक्य में 'यदि' और 'चेत्' दो पर्यायवाची अव्ययों का प्रयोग किया, जिस पर पं० तुलसीरामजी ने आपत्ति की। पं० बिहारीलाल पं०तुलसीरामजी को व्याकरण-विषयक शास्त्रार्थ में घसीटना चाहते थे; परन्तु उक्त अशुद्धि के पकड़े जाने पर जब उनको प्रशंगवशात् लौकिक विषय पर संस्कृत-भाषण करना पड़ा तो असंबद्ध और अशुद्ध भाषण करने लगे, जो क्रिया पदों के प्रयोग से सर्वथा शून्य होने के कारण नितांत नीरस प्रतीत होता था। तत्पश्चात् पं० रामचंद्र

देहलवी ने शास्त्रार्थ के प्रस्तुत विषय मूर्त्ति पूजा को छोड़ कर महर्षि दयानन्द के लेखों के छिद्रान्वेषण पर भाषण किया, जिसका युक्तियुक्ति उत्तर पं० तुलसीरामजी ने दिया और मूर्तिपूजा विषय के धर्मसभा के वादी होने वा न होने के विषय पर उत्तर प्रश्नोत्तर होकर 'सनातनधर्म की जय" के घोष के साथ सनातनी लोग सभास्थल से उठकर चले गये। उक्त विवाद का यह वृत्तांत विनीत लेखक का अपनी आँखों देखा और कानों सुना हुआ है।

शेरकोट में एक दूसरा शास्त्रार्थ स्वामी दर्शनानन्दजी का जैनियों से 'जगतकर्ता' परमेश्वर की सत्ता के विषय पर भी हुआ था, जिसका इतना ही वृतांत विदित है कि जैन जन स्वामी दर्शनानन्दजी के तर्क कुठार के सामने न ठहर सके थे।

अधिकांश आर्यसमाजों के समान शेरकोट में भी आर्य-समाज का कोई पूर्व-कालीन लेख बद्ध वृतांत विद्यमान नहीं नहीं है। सन् १९१४ ई० में शेरकोट में आर्यसमाज के संग-ठनार्थ बा० महावीर प्रसादजी आनरेरी मजिस्ट्रेट के मकान पर एक सभा चांदपुर निवासी मा० रामस्वरूपजी गर्म, चौ० बहालसिंहजी चौकीदार तथा पं० मथुराप्रसादजी चौकड़ायत के उद्योग से की गई थी। उसमें शेरकोट आर्यसमाज की नियमपूर्वक स्थापना हुई तथा उसके प्रधान पं० श्यामसुन्दर जी और मंत्री वैद्य बनवारीसिंहजी नियत हुए। इस समाज

के आधीन एक अछूत पाठशाला भी कुछ दिनों तक चलती रही तथा आर्यसमाज मंदिर का एक कमरा भी उस भूमि पर बनकर तैयार हुआ, जो उपरि-प्रशंसित पं० हरवंशलालजी ने दान दी थी, और उसके दानपत्र की रजिस्ट्री संयुक्तप्रांतीय आर्य प्रतिनिधि-सभा के नाम करादी थी, परन्तु अब उक्त रजिस्टर्ड दान पत्र उक्त सभा के कार्यालय वा शेरकोट में कहीं भी नहीं मिलता है। कुछ काल पश्चात् मा० रामस्वरूपजी और चौ० बहालसिंहजी चौकीदार के अन्यत्र बदल जाने तथा पं० मथुराप्रसाद चौकड़ायत के देहांत के कारण समाज में शिथिलता आगई। इस शैथिल्य को दूर करने के लिए सन् १९१८ में वैद्य बनवारीलालजी तथा पं० प्यारेलालजी के उद्योग से एक वार्षिकोत्सव भी किया गया। परंतु उसका कुछ फल न हुआ और आर्यसमाज शेरकोट की प्रसुप्त अवस्था हो बनी रही। तत्पश्चात् बिजनौर मंडलार्योपप्रतिनिधि सभा के प्रयत्नकाल में एप्रिल सन् १९२१ ई० को उक्त सभा के उपदेशक पं० बिहारीलालजी (अब काव्यतीर्थ) के उद्योग से आर्यसमाज शेरकोट का पुनः संगठन हुआ और तब से समाज सोत्साह तथा नियम पूर्वक चल रहा है।

आर्यसमाज शेरकोट का अपना समाज मन्दिर विद्यमान है, जिसका मूल्य लगभग एक सहस्र रुपया है। यहाँ एक व्यायाम शाला भी है, जिसमें बालकों को निःशुल्क व्यायाम शिक्षा दी जाती है। शेरकोट में जात-पात को तोड़ कर ८ विवाह हुए।

श्री मा० गुमानी सिंहजी
मन्त्री विजनौर मण्डलार्योपप्रतिनिधि-सभा

इस समाज के कई सदस्य कपड़े की छपाई के शिल्प में सुदक्ष हैं। पं० परमानन्दजी आर्य पुरोहित गतका, फरी, लाठी और तलवार चलाने में सुनिपुण हैं। आपको बिजनौर आर्य समाज के वार्षिकोत्सव पर तलवार के कर्तब दिखलाने के लिए अजमेर निवासी पं० प्रकाशचन्द्रजी ने एक पदक भी प्रदान किया था।
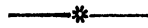
पुरैनी आर्यसमाज।

पुरैनी ग्राम नगीना तहसील और परगने में २९°, २३′ उत्तरीय आक्षाँश और ७८°, २७′ पूर्वीय देशांतर पर नगीने से धामपुर और मुरादाबाद को जाने वाली सड़क पर पश्चिम की ओर नगीने से ५ मील के अन्तर पर बसा हुआ है। यह ईस्ट इंडियन रेलवे का स्टेशन भी है। यहाँ ब्राञ्च पोस्ट आफ़िस है और शिक्षा के लिए एक मिडिल और एक प्राइमरी स्कूल है पुरैनी से दक्षिण की ओर मिले हुए कल्यानपुर ग्राम में सप्ताह में दो बार पेंठ लगती है। इस ग्राम की जनसंख्या एक सहस्र के लगभग है, जिसमें ढाई सौ के लगभग मुसलमान हैं। यहाँ बसने वाली मुख्य जात चौहान, जुलाहे और और चमार हैं। इस ग्राम का क्षेत्रफल ११४६ एकड़ है, जिसमें से ८७० एकड़ जोत में है। इस गाँव की मालगुज़ारी २७५७) है और वह चौहानों और मुसलमानों की सम्मिलित ज़मीदारी है।

पुरैनी ग्राम में आर्य-समाज की स्थापना।

पुरैनी में सब से प्रथम आर्य-धर्म की चर्चा स्वर्गीय वृद्ध मु० दौलतसिंहजी पेंशनर ओवर-सियर ने पहुंचाई थी। आप हल्दौर में भी रहे थे और विनीत लेखक के सुपरिचित थे। वैदिक धर्म का अनुराग आप में कूट-कूट कर भरा हुआ था। आप की धर्म-चर्चा से स्वर्गीय चौधरी छज्जूसिंह जी, मास्टर गुमानीसिंहजी (वर्तमान मंत्री, बिजनौर मण्डल आर्योपप्रतिनिधि सभा) आर्यसमाज के प्रसिद्ध भजनोपदेशक म० छज्जूसिंहजी रागी तथा स्वर्गीय चौ० हरदयालसिंहजी आदि ने प्रभावित होकर आर्य विचार ग्रहण किए, जो शनैः शनैः परिपक्व अवस्था को प्राप्त होते रहे। सन् १९०२ ई० में धामपुर आर्यसमाज का सुप्रसिद्ध समारोह वार्षिकोत्सव था, उस पर पुरैनी के उक्त महाशय भी पधारे थे। उन्होंने इस अवसर को अपने ग्राम पुरैनी में आर्य-धर्म-प्रचार और आर्यसमाज-स्थापन के उपयुक्त समझा। और उक्त वार्षिकोत्सव में आए हुए पं० निरंजन-देवजी महोपदेशक संयुक्तप्रांतीय आर्य प्रतिनिधि सभा तथा पंजाबी स्वामी योगेन्द्रपालजी को अपने साथ पुरैनी लिवा लाए। वहाँ बड़ी धूमधाम से उनके कई व्याख्यान कराए गए और उसी समय सन् १९०२ ई० में पुरैनी आर्यसमाज की स्थापना भी हुई। तब ही बहुत से महाशयों ने यज्ञोपवीत भी धारण किए। चौ० हरदयालसिंहजी रईस पुरैनी, जो फ़ारसी भाषा

में प्रविष्ट, विद्याप्रेमी थे और सुना है कि उनके यहाँ फ़ारसी के कई प्राचीन सुन्दर हस्तलिखित ग्रन्थ भी थे, इस समाज के प्रथम प्रधान बनाए गए। पुरैनी ग्राम चौहान (चाहमान) वंशीय राजपूतों का गढ़ है। चाहमान वंश सांभर और अजमेर के मध्यकालीन राजपूत राज्य के संस्थापक तथा भारत के अन्तिम सम्राट् प्रसिद्ध पृथ्वीराज के पूर्व-पुरुष होने का सच्चा अभिमान रखता है। बिजनौर ज़िले में चौहान-वंशीयों की जनसंख्या ६१४४३ है, जो चमार कहलाने वाले दलित समुदाय से उतर कर सब से बड़ी संख्या है। आगे चलकर पुरैनी आर्यसमाज ने चौहान राजपूतों में वैदिक-धर्म-प्रचार-कार्य में मुख्य भाग लिया है। उसका स्थान सामाजिक सुधार और दलितोद्धार में भी अग्रणी आर्यसमाजों में है, हरगनपुर ग्राम के ज़मीदार चौ० भीमसिंहजी की जन्मजात मुसलमानी, पूर्व वेश्या, रक्षिता (रखैली) उपपत्नी और उसकी सन्तान चौ० लालबहादुरसिंह आदि को, आर्यसमाज में प्रवेश और चौहान बिरादरी में उनके अंगीकार पूर्वक, उनके विवाह कराने में पुरैनी आर्यसमाज का अग्र उद्योग था। उनके वैदिक-धर्म-प्रवेश के सहभोज में उक्त समाज के चौहान वंशीय क्षत्रियों ने सब से प्रथम सम्मिलित होकर अपनी क्षत्रियोचित वीरता का परिचय दिया था। इस सारे कार्य में मा० गुमानीसिंहजी ने प्रबल उद्योग किया था। आपको अपना बहुत सा समय इस कार्य के जोड़ तोड़ लगाने में व्यय करना पड़ा था। मा० गुमानीसिंहजी का वासस्थान और जन्म ग्राम यद्यपि नगीने का

निकटवर्ती ग्राम हैज़रपुर है, तथापि आपका कार्यक्षेत्र मुख्यतः पुरैनी ही रहा है। यहाँ आपके उद्योग से एक हिन्दी का मिडिल स्कूल भी स्थापित है, जिसने हिन्दी प्रचार में बड़ा काम किया है। बिजनौर-आर्योपप्रतिनिधि-सभा के प्रयत्न काल में चमार कहलाने वाले दलित समुदाय की जनता का जो बहुसंख्यक प्रवेश श्री ठाकुरदासजी के नेतृत्व में हो-रहा है, उसमें भी मा० गुमानीसिंहजी प्रधान उद्योगियों में से हैं। इस कार्य में चौहान वंशीय जनता का जो सहयोग आर्य-समाज को प्राप्त हुआ है, उसका बहुत कुछ श्रेय आपको तथा आपके साथ काम करने वाले पुरैनी मिडिल स्कूल के मुख्याध्या-पक मा० उमरावसिंहजी और पुरैनी निवासी म० छज्जूसिंह-जी रागी भजनोपदेशक को है। पुरैनी समाज का अन्य विवरण आर्यसमाज-कोष्ठक-पत्रावलि में मिलेगा।

हल्दौर आर्यसमाज।

हल्दौर उपनगर २९°, १७′ उत्तरीय अक्षांश और ७८°.१७′ पूर्वीय देशान्तर पर, नहटौर से गंजदारानगर को जाने वाली सड़क के दोनों ओर बिजनौर से ११ मील दक्षिण पश्चिम को, बसा हुआ है। यहाँ से एक सड़क दक्षिण की ओर चाँदपुर को जाती है, जो कि अंभेड़ा ग्राम के पुलिस-स्टेशन के निकट हल्दौर से दो मील पर बिजनौर मुरादाबाद की कच्ची सड़क को काटती है। यहाँ की जनसंख्या सन् १९२१ ई० की मनुष्य-

गणना में ४३०० थी, जिसमें से ९४५ मुसलमान थे। यहाँ बसने वाली हिन्दुओं की प्रधान जातें चौहान, वैश्य और चमार हैं। हल्दौर सब पोस्ट आफ़िस है और ईस्ट इंडियन रेलवे की गजरौला-मोअज्ज़मपुर शाखा का रेलवे स्टेशन है। बिजनौर चाँदपुर के विद्युत् प्रकाश के तार की लाइन भी यहाँ को होकर गई है। यहाँ रविवार बृहस्पतिवार, बुधवार और शनिवार को सप्ताह में चार पैंठ लगती हैं, उनमें पहिली दो रविवार और बृहस्पतिवार की पैंठें, जो इन्हीं वारों के नाम के बाज़ारों में लगती हैं, प्राचीन और बड़ी हैं और अन्तिम दो शनि और बुध की पैंठें, जो बाज़ार हरबंसगंज में लगती हैं, उक्त पहिली पैंठों की अपेक्षा नवीन और छोटी हैं। ये उक्त हरवंसगंज को बनवाने वाले राजा हरवंससिंहजी के पिता कुँवर बुधसिंहजी की लगवाई हुईं हैं और प्रधानतः शाक विक्रय की पैंठें हैं। हल्दौर की जाँगल्य भूमि १६२६ एकड़ है, जिसमें से १२६५ एकड़ में खेती होती है। हल्दौर की मालगुज़ारी ४७५०) वार्षिक है और वह पट्टीदारी के रूप से स्वर्गीय राजा हरबंससिंह की विधवा रानी श्रीमती बीबीकुँवर और उनके भतीजे स्वर्गीय कुँवर तेजबल विक्रम बहादुर की विधवा श्रीमती सदाकुँवर उनके पुत्र तथा पौत्र की ज़मीदारी में है। इस कुल के पूर्व पुरुष चौधरी कहलाते थे और उनमें से चौ० बख़्तमल ने रुहेलों के शासन में प्रतिष्ठा प्राप्त की थी, इस वंश में चौ० मानसिंह महत्वशाली हुए है, जो अवध के नवाब वज़ीर के शासन मे चकलेदार के पद पर प्रतिष्ठित थे और कृषि

की खेवट में उनके नाम पर बड़ी ज़मीदारी (Estate) अंकित थी। इसके कि वे इस ज़िले के अँग्रेज़ों को मिलने पर अन्ततः भू-स्वामी मान लिए गए थे। चौ० मानसिंह जी के पौत्र श्री रणधीरसिंह जी सन् १८५७ ई० के सैन्य-विद्रोह में अंग्रेज़ों के राजभक्त प्रमाणित हुए थे; क्योंकि वे नजीबाबाद के नवाब महमूदखाँ से सतत युद्ध में तत्पर रहे थे। इसके पारितोषिक स्वरूप उनको अँग्रेज़ी सरकार से राजा की उपाधि मिली थी और अपने जीवन भर के लिये हल्दौर की मालगुज़ारी भी उनको माफ़ (क्षमा) थी। राजा रणधीरसिंह सन् १८८१ ई० में स्वर्ग सिधारे और उनके भतीजे कुँवर श्री महाराजसिंह उनके उत्तराधिकारी हुए, कुँवर महाराजसिंह को सन् १८७१ ई० में वैयक्तिक विशिष्टता के रूप में राजा की उपाधि प्राप्त हुई। सन् १८८६ ई० में राजा महाराजसिंह के देहान्त पर उनकी सम्पत्ति, जिसमें १६७६६) वार्षिक मालगुज़ारी के २४ ग्राम और २३ ग्रामांश थें, दो भागों में विभक्त होगए। एक भाग के दायभागी उनके ज्येष्ठ पुत्र कुँवर प्रतापसिंह थें, जिन्होंने उसको अपनी विलासिता वश कुप्रन्ध के कारण ऋण-ग्रस्त होकर नष्ट कर दिया था, द्वितीय दायभागी कनिष्ठ पुत्र कुँवर तेजबल विक्रम बहादुर की संपत्ति भी ऋण निमग्न होकर नष्टप्राय होगई और उनकी विधवा श्रीमती सदाकुवरँ, तथा उनके प्रमत्त (पागल) पुत्र कुँवर रामसिंह और शिशु पौत्र शेरसिंह के पास नाम मात्र

ज़मीदारी रह गई है और वह अब कोर्ट आफ़ वार्डस के प्रबंध में है। रियासत हल्दीर का द्वितीयार्ध राजा महाराजसिंह के समय में ही विभक्त होकर उनके दायभागी कुँवर बुधसिंह के अधिकार में था, इस द्वितीय भाग में भी २३ ग्राम और ३६ ग्रामांश २५११३) वार्षिक मालगुज़ारी के थे। कुँवर बुधसिंह-जी के सितम्बर सन् १८६० ई० (द्वितीय भाद्रपद सं० १६४३ वै०) में देहांत के पश्चात् उनके एक मात्र पुत्र कुँवर हरबंश-सिंह उनके उत्तराधिकारी हुए और उनको वैयक्तिक प्रतिष्ठा के रूप में सन् १६०८ ई० में राजा की उपाधि मिली। राजा हरबंससिंह बड़े सुप्रबन्धक योग्य ज़मींदार थे और उन्होंने १५ एप्रिल सन् १६०६ ई० में अपने देहांत के पश्चात् अपनी रियासत को समृद्धावस्था में छोड़ा था। अब उनकी रियासत उनकी रानी श्रीमती बीबी कुँवरजी के अधिकार और प्रबन्ध में है।

हल्दौर उपनगर का धार्मिक इतिहास भी कुछ विशेषता रखता है। यहाँ गत शताब्दी में हिन्दू-धर्म की सुधारक श्रेणी के कई साधु होगए हैं, जिनमें प्रथम शाहआलम (प्रथम बहा-दुरशाह) के राजत्व काल (सन् १७०७ ई० से सन् १७११ ई० तक) में श्री पानपदासजी पानपदासी पन्थ के प्रवर्तक, प्रसिद्ध धर्मोपदेष्टा साधु हुए हैं, उन्होंने अपने हिन्दी के पद्यों में मूर्ति पूजा, मृतक, श्राद्ध, अवतारवाद आदि पौराणिक सिद्धांतों का प्रबल खण्डन करके परम-पिता की अनन्य भक्ति का प्रचार

किया था, हल्दौर रियासत के पूर्व पुरुष चौ० बख़्तमलजी उनके श्रद्धालु शिष्य थे, उन्होंने उनके उपदेशों को अंगीकार करके पानपदासी पन्थ की गद्दी हल्दौर और धामपुर में स्थापित करने में पूरी सहायता दी थी। हल्दौर धामपुर आदि ज़िला बिजनौर के और जलालाबाद आदि ज़िला मुज़फ़्फ़रनगर के अनेक ग्रामों में पानपदासी पन्थ के बहुत से अनुयायी वर्तमान थे जिनको इस पन्थ में "मिलापी" पद से पुकारा जाता था। आजकल धामपुर और हल्दौर में इस पन्थ के महन्तों की गद्दियाँ है, जो कुछ भू-संपत्ति की भी स्वामिनी हैं और उनके वर्तमान महंत उनके सर्वेसर्वा और सर्वाधिकारी स्वामी बने हुए हैं, महन्तों की अन्य गद्दियों के समान उनमें भी अपने संस्थापक गुरुओं का धर्मोपदेश और सदाचार बल नष्ट होकर केवल ग्रन्थ पूजा रह गई है और उनके अनुयायियों को हिंदुत्व के अजगर ने उसी प्रकार निगल लिया है, जिस प्रकार वह भारत के अन्य सुधारक सम्प्रदायों को पचाकर अपने शरीर का अंश बनाता रहा है।

बाबा मनसादास और उदासी श्री रामासाध दो अन्य साधु भी हल्दौर में हो गुज़रे हैं, उनमें से बाबा मनसादास की समाधि का विशाल भवन, और रामासाध की गद्दी और समाधि भी यहाँ बनी हुई हैं। भारत के अन्य मध्यकालीन साधु सम्प्रदाय-प्रवर्तक महापुरुषों के समान हल्दौर के श्री पानपदासजी भी संस्कृतानभिज्ञ और शास्त्रानुशीलन-शून्य

होने के कारण अपने समय की लौकिक बोलचाल की भाषा में ही अपनी पद्यरूप धर्मोपदेश वाणी का ग्रन्थन और संग्रह किया था, परिणामत: उनका अनुयायि-वर्ग भी भक्तिभाव और सदाचार में श्रद्धासम्पन्न होते हुए भी देववाणी से सर्वथा वंचित और वेदशास्त्रों से बहिर्मुख रहा। आगे चल कर मत-वाद की कट्टरता ने उनमें संस्कृताध्ययन और शास्त्राभ्यास के प्रति एक प्रकार की घृणा सी उत्पन्न करदी थी। मतवाद की कट्टरता का यह गुण ही है कि वह सत्य सिद्धान्तों की अन्तरात्मा को त्याग कर उसकी बाह्य शरीराकृति और रूप-रेखा की अनन्य अनुयायिनी बन जाती है। पिछले पानपदासियों के भी मत-पक्षपात और कट्टरत्व की यह अवस्था थी कि वे पौराणिकता के प्रतिरोध के अन्धे उत्साह से प्रमत्त होकर देववाणी के परित्याग के साथ गंगा-स्नान और गंगा-जल-पान तथा चन्दन के तिलक तक से भी द्वेष करने लगे थे। इसीका यह फल था कि वृद्धों के मुख से सुना गया है कि हल्दौर में यदि कहीं से कोई संस्कृत की चिट्ठी आजाती थी, तो उसको बंचवाने के लिए ५ मील पर झालू ग्राम में लेजाया जाता था। हल्दौर में इस संस्कृतानभिज्ञता ने इतना प्रसार पाया कि किसी समय में यहाँ सम्भ्रांत द्विजातीय कुलों में देवनागरी का 'कालाअक्षर भैंस बराबर' होगया था। उनमें वर्णाश्रम धर्म के परिचायक यज्ञोपवीत आदि संस्कारों का भी सर्वथा लोप होगया था। यहाँ के समृद्ध सज्जन फ़ारसी भाषा

की उपासना और उसके पढाने वाले मौलवियों की सेवा में ही रत रहने लगे थे। पानपदासी पन्थ के पुराने हिंदुत्व में विलीन होजाने पर जब पौराणिक पूजा-पाठ ने बल पकड़ा, तो कुछ ब्राह्मणब्रुवों ने स्तोत्र आदि के कुछ अशुद्ध पाठ कण्ठस्थ कर लिए और उनसे ही अपने यजयानों के यहाँ पौरोहित्य-वृत्ति का काम चलाने लगे। यजमान लोग फ़ारसी पढ़ कर आचार विचार से आधे मुसलमान होते हुए भी हिंदू-पन की नाक रखने के लिए अपने नाम मात्र के धार्मिक कर्म-काण्ड में पूर्णतः अपने पुरोहित पण्डितों पर आश्रित रहते थे, उसके स्याह सफ़ेद की उनको कोई ख़बर न रहती थी। अपने पूज्य देवी देवताओं के नामस्मरण और जप पाठ के लिए भी ये नाम मात्र के पण्डित ही वेतन पर नियुक्त किए जाते थे और ये ही उनके घरों में नित्यप्रति जाकर उनके लिए स्तोत्र-पाठ वा जप करते थे। ये बातें अपने बाल्यकाल में विनीत लेखक की अपनी आँखों देखी हुई हैं। मेरे पूज्य पिताजी के यहाँ भी एक पण्डितजी प्रति दिन पधार कर पाठ किया करते थे और अपने ठाकुरजी की पूजा अर्चा भी करते थे। उनके पूजा पाठ को देख कर मेरे मनमें भी उसके अनुकरण की श्रद्धा उत्पन्न हुई और मैंने भी शालिग्राम (काली पथरियाँ) और नर्बदेश्वर (श्वेत पथरियाँ) सिंहासन में सजाकर स्नान, धूप, दीप, नैवेद्य से उनकी पूजा प्रारंभ की। मेरे बाल मनमें भी पंडित जी के समान पूजा और स्तोत्रपाठ का उत्साह उत्पन्न हुआ।

मैंने स्तोत्र के एक दो पद्यों को पंडितजी से पूछ कर फ़ारसी लिपि में लिख लिया, किन्तु फ़ारसी लिपि को उनके उच्चारण के लिख सकने में बिलकुल असमर्थ पाकर मेरे बालहृदय में नागरी अक्षर सीखने की कामना हुई। मैंने उस समय लिथु में महाभट्टी छपी हुई अक्षर-दीपिका नामक नागरी वर्णमाला बाज़ार से मोल लेकर उसमें नागरी वर्णों के नीचे फ़ारसी लिपि में दिए हुए उच्चारणों की सहायता से नागरी वर्णों के उच्चारण और उनके रूप सीख लिए तथा उसमें से कण्ठाग्र की हुई 'क, का, कि, की' की अन्य वर्णोंसे मिलाकर शब्द बनाने का ऊहापोह करने लगा। मुझको अब तक स्मरण है कि प्रथम बार जब मैंने 'का' को 'म' के साथ मिलाकर 'काम' उच्चारण का अनुमान करके अपने पुरोहित जो से अपने अनुमान की यथार्थता पूछी और उन्होंने उसका उच्चारण मेरे अनुमानानुसार 'काम' ही बतलाया, तो मुझको अत्यानन्द हुआ था। यहां इस अवसर पर मुझको अपनी आत्म-कथा वा आत्मचरित लिखना अभिप्रेत नहीं है, प्रत्युत उस समय की अवस्था वा इतिहास बतलाने के लिए प्रसंगवशात् वह वृत्तान्त लिखना पड़ा है। उस समय हल्दौर में आर्यसमाज का किसी को भी पूरा परिचय न था। यह सं० १९४५-४६ वै० (सन् १८८९ ई०) की बात है, जब कि लेखक की आयु १२ वर्ष की थी (मेरा जन्म ४ जनवरी सन् १८७८ ई० का है), महर्षि दयानन्द के विषय में में यहाँ के लोग यह उद्गार निकाला करते थे कि वह ईसा-

इयों का प्रचारक है, और हिंदुओं का धर्म बिगाड़ता फिरता है, अमुक-अमुक स्थान पर उसको मार कर भगा दिया गया। कोई कोई कहता था कि वह रूसी वा फिरंगी है। वेद और वैदिक धर्म के विषयों में भी ऐसी कपोल-कल्पित मिथ्या भावनाएँ प्रचलित थीं कि वेद में तो यह लिखा है कि जिस पात्र से शौच जाकर जल-स्पर्श किया जाय, उसी से जल पी भी लिया जाय। यह वचन मैंने अपने पूज्य पिताजी के मुखारविंद से सुना था। उनको भी उस समय के पण्डितम्मन्यों ने ऐसा बतला रक्खा था। उन दिनों में दो चार वर्ष पूर्व ही हल्दौर में आर्यसमाज के प्रचारक स्वा० सहजानंदजी के हल्दौर आने और यहाँ से उनको हरा कर भगा देने का भी वृत्तांत कर्ण-गोचर हुआ करता था। स्वा० सहजानंदजी के वैदिक-धर्म-प्रचारार्थ हल्दौर पधारने की संमतिपूर्वक संक्षिप्त कथा इस प्रकार है।

राजा जयकृष्णदास-कुँवर भारतसिंह-सहजानंद-प्रयत्न काल में संभवतः सं० १९४० वा १९४१ वै० (१८८३-८४ ई०) में उक्त स्वामीजी बिजनौर आर्यसमाज के वृत्तांत में वर्णित कुँवर भारतसिंहजी ज्वाइंट मजिस्ट्रेट की सिफ़ारशी चिट्ठी यहाँ के रईस कुँवर बुधसिंहजी के नाम लेकर आर्यधर्म-प्रचारार्थ हल्दौर पधारे थे। उनके यहाँ आने और धर्म-प्रचार का विज्ञापन यत्र तत्र लगाने पर यहाँ की नाम मात्र की पण्डित-पुरोहित-मण्डली और कट्टर पौराणिक जनता में

उसी प्रकार आतंक छागया, जैसा कि किसी नगर पर किसी शत्रु के आक्रमण-समय हुआ करता है। सामान्य शत्रु की चढ़ाई देखकर परस्पर विरोधी पण्डितों का भी मेल होगया। इन्दौर के प्रसिद्ध पिण्डु स्वामी, जिनका वास्तविक नाम स्वामी रामदयाल था और जो कण्ठी देकर चेले बनाने के व्यवसाय में बड़े निपुण थे तथा जिनका साधारणतः सारस्वत-चन्द्रिका-व्याकरण में भी चञ्चू-प्रवेश बतलाया जाता था अपने घोर विरोधी, यहाँ से दो मील पर स्थित नाँगल ग्राम-वासी, सिद्धान्त कौमुदी-पाठी पं० बेणिरामजी के पास मंत्रणा के लिए पहुंचे। युद्ध-मन्त्रण-सभा (Council of war) एकत्र हुई। जिसमें यह युद्ध-प्रणाली निश्चित हुई कि प्रथम पौराणिक पक्ष को ही आक्रमण करना चाहिए, ऐसा न हो कि प्रथम शत्रु धावा बोल देवे और पौराणिक पण्डित उसके निराकरण में असमर्थ रहें। पं० बेणिरामजी को सेनानी बनाया गया। तदनुसार उक्त पंडित जी ने, स्वा० सहजानन्दजी के पास पहुंच कर प्रणाम, कुशल-प्रश्नादि शिष्ट व्यवहार के बिना ही "क्व भवतामुषतिः" के वाग्बाण का प्रथम प्रहार कर दिया। स्वा० सहजानन्दजी के उसके प्रत्युत्तर में प्रवृत्त होते न होते ही श्री पिण्डुस्वामीजी ने उन पर "बिश्नोई कहलाने वाले मुसलमानों" को यज्ञोपवीत-प्रदान के उनके अपराध का आरोप-रूपी दूसरा शस्त्र छोड़कर, उस आरोप का उत्तर उनसे अति अशिष्ट निकृष्ट शब्दों में माँगा।

स्वा० सहजानन्द जी के यह उत्तर देने पर, कि विश्नोई समुदाय का आचार पूर्ण शुद्ध था और उनको यज्ञ का अधिकारी समझ कर यज्ञोपवीत-प्रदान किए गए थे, राजा महाराजसिंह जी ने अपने मुखारविन्द से यह कथन किया कि हम अपने बदलू भंगी को बुलाते हैं, तुम उसको हमारे शुद्धाचारी बतलाने पर उसको भी यज्ञोपवीत देदो। इस साक्षात् वितण्डा वा जल्प-रूप विवाद पद्धति का सामना करने की सामर्थ्य स्वा० सहजानन्द जी में कहाँ थी। उनको निरुत्तर होकर तत्काल हल्दौर से प्रस्थान वा पौराणिक पण्डितों के पक्षों में "पलायन" करना पड़ा। कुँवर भारतसिंह जी को स्वा० सहजानन्द जी की इस राजा महाराजसिंह कृत अवज्ञा से बड़ा खेद हुआ था।

उपर्युक्त घटना के पश्चात् दीर्घ काल तक हल्दौर में आर्य समाज के विषय में वैसा ही भ्रम फैला रहा। पण्डित और पुरोहित-वर्ग अपने यजमानों को वज्रमूर्ख और संस्कृतानभिज्ञ रखने में ही अपनी आजीविका की कुशल समझता था। सन् १८६१ ई० में मेरे मान्य-बंधु, पितृव्यपुत्र श्री ठाकुरदासजी ने पूर्व वर्णित नाँगल-निवासी पं० बेणिरामजी से, जोकि उनके पिताजी के यहाँ प्रतिदिन श्री दुर्गा का संपुट पाठ करने पर नियुक्त थे, लघु-कौमुदी पढ़ना आरम्भ किया। अभी आदि के मंगलाचरण श्लोक "नत्वा सरस्वतीं देवीम्" की व्याख्या का खर्रा ही कण्ठाग्र होकर चुका था कि हमारे कुछ पाधे

और "आसिरत" के कोलाहल ने "तूँम्बी में तूफ़ान" खड़ा कर दिया। एक ओर उन्होंने पं० बेणीरामजी पर पाठ-त्याग के लिए यह कहकर बल दिया 'क्या अब बनियों को पढ़ाने लगे हो, ये पढ़कर कल को हमारे संकल्पों के उच्चारणों में अशुद्धि पकड़ा करेंगे", दूसरी ओर हमारे घर की देवियों को यह कहकर बहकाया गया कि संस्कृत पढ़ने से घर से लक्ष्मी रूठ कर चली जाती है। इस जोड़तोड़ का फल यह हुआ कि उक्त पंडित जी को अगत्या दो ही दिन पीछे श्री ठाकुरदास जी को कौमुदी पढ़ाना छोड़ देना पड़ा और उस समय उनकी संस्कृताध्ययन की अभिलाषा मन की मन में ही रहगई। यह अन्य बात है कि आगे चलकर चिरकाल पश्चात् अपने परिश्रम से उन्होंने संस्कृत-व्याकरण-पाणिनीय अष्टा-ध्यायी और सिद्धांतकौमुदी में पारंगति प्राप्त की।

आर्यसमाज के ऐसे प्रबल विरोध की परिस्थिति में, जब कि वहाँ के राजा (ज़मीदार) और प्रजा (जनता) दोनों ही आर्यसमाज के प्रतिकूल थे, हल्दौर में किसी आर्य प्रचारक का प्रवेश तो दीर्घकाल तक असंभवप्राय ही था। इसी मध्य में सं० १६४७ वै० के ग्रीष्म काल (मई सन् १८६० ई० में) में लेखक को पंजाब-प्रान्तान्तर्गत लुधियाना के स्वतंत्र विचारक मु० कन्हैयालालजी अलखधारी के उर्दू ग्रंथ देखने को मिले, सौभाग्य या दुर्भाग्य से विनम्र लेखक को बाल्यावस्था से ही स्वाध्याय का व्यसन रहा है। हमारे कुल

में श्री लाला ठाकुरदासजी के अग्रज, मेरे मान्य पितृव्य-पुत्र श्री ला० डालचंदजी के पास उक्त अलखधारीजी की "अनु-वारमामुतनाही" और "भागभरी" दो किताबें पूर्व से विद्यमान थीं, उनकी लेखन-शैली और विचार-सौष्ठव से आकृष्ट होकर मेरे मनमें उनके अन्य ग्रन्थ देखने की भी उत्कण्ठा आविर्भूत हुई। इसलिए उनके सब ग्रन्थों को 'विद्या-दर्पण' प्रेस मेरठ से मँगाकर पढ़ा गया। उसमें से महर्षि दयानन्द के कार्य का पूरा परिचय दिया गया था और शतमुख से उनकी स्तुति वर्णित थी। उसको पढ़कर मेरे मन में आर्यसमाज के सिद्धांतों को जानने और महर्षि दयानंद के ग्रन्थानुशीलन का प्रगाढ़ अनुराग उत्पन्न हुआ। परंतु महर्षि के सब ग्रन्थ उस समय हिन्दी भाषा में ही थे—उस समय उनमें किसी का भाषान्तर वा अक्षरान्तर न हुआ था—और हिन्दी में मेरी इतनी गति न थी कि मैं उन ग्रंथों को अनायास बाँच सकूँ, इसलिए आर्यसमाज के बहुत से उर्दू के ट्रैक्ट उसी मेरठ के 'विद्यादर्पण' प्रेस से मँगवाए गए और बड़ी लगन से उनका अध्ययन किया गया। उसमें एक पुस्तक कनखल-निवासी मुं० मूलचंद मदर्रिस कृत "तवा-रीख़-ए-हरद्वार" भी थी, इस पुस्तक के अध्ययन ने मेरे विचार सर्वथा पलट दिए और पौराणिक मत और मूर्त्तिपूजा से मेरी श्रद्धा बिल्कुल हट गई। तत्पश्चात् मैंने महर्षि दयानंद कृत सत्यार्थ-प्रकाश भी मँगाकर अटक अटक कर बाँचा। उस समय के अपने हिन्दीज्ञान की हीनता मुझको अभी तक भले

प्रकार स्मरण है कि तब मेरे संस्कृत शब्दों का उच्चारण कैसा अशुद्ध था। उन दिनों हमारे कुटुम्ब वा हल्दौर की आर्य जनता में किसी के भी आर्यसामाजिक विचार न थे, मेरे विचारों के सब घोर विरोधी थे, मेरी दशा "जिमि दशनन में जीभ विचारी" (तुलसी) की सी थी। यद्यपि मेरे विचार शनैः शनैः पकते रह कर परिपक्व बन गए थे. पर वह काल बहुत पीछे आया. जब कि मैं अपने विचारों को अपने कार्य में परिणत कर सका—किसी आर्य उपदेशक को हल्दौर में बुलाकर धर्म-प्रचार करा सका वा उससे यज्ञोपवीत-धारण कर सका—इसको मेरी भारुता का निस्सहायावस्था, जो कुछ भी हो, समझा जा सकता है। आर्यसामाजिक विचारों की परिपक्वता से पूर्व मुझ को किसी आर्योपदेशक के व्याख्यान सुनने का सौभाग्य प्राप्त न हुआ था, मेरे विचार बनाने का मुख्य साधन मेरी अध्ययन-शीलता ही रही है। इस मध्य में पौराणिक पण्डितों से आर्यसमाज के सिद्धांतों की बात चीत चलने पर और उनके यह कहने पर, कि महर्षि दयानन्द और उनके अनुयायियों के प्रस्तुत प्रमाणों के अर्थ मूल से विरुद्ध हैं और उनकी शुद्धाशुद्धता का ज्ञान किसी संस्कृतज्ञ को ही हो सकता है, मेरे मन में संस्कृतानुशीलन तथा प्रमाण-ग्रन्थों को उनके मूल रूप में अध्ययन की उग्र उत्कण्ठा उत्पन्न हुई और उसके पूर्त्यर्थ मैंने किस किस प्रकार के, क्या क्या कष्ट, कैसे कैसे उठाए, काँगड़ी गुरुकुल और ज्वालापुर महाविद्यालय में वास करके इस मनोरथ की सिद्धि के लिए क्या क्या उद्योग किए, इस विषय का

वर्णन इस इतिहास के क्षेत्र से बाहर है और जीवन शेष रहने पर यथावसर फिर कभी उसका सविस्तर उल्लेख किया जा सकता है।

आर्योपदेशकों के मौखिक प्रचार के अभाव में भी मैं स्वस्वल्प सामर्थ्यानुसार अपने मिलने वालों में पुस्तिका (Tract) बाँट कर वैदिक धर्म का प्रचार करता रहा। जिन शुद्ध और सरल हृदयों ने उन पुस्तकों को पढ़कर आर्यविचार ग्रहण किए, उनमें, हल्दौर के समीप उत्तर को तीन मील पर स्थित, बिलाई (भलाई) ग्राम वास्तव्य, स्वर्गीय चौ० बख़्शीरामजी पश्चात् म० धर्मेन्द्रजी का नाम विशेषतः उल्लेखनीय है, उक्त महाशय के मानसक्षेत्र की भव्यभूमि ऐसी उर्वरा सिद्ध हुई कि उसमें वैदिक धर्म के अँकुर ने बद्धमूल होकर होनहार बिरवे का रूप धारण किया। किन्तु इस बिरवे पर अभी फूल ही आए थे कि अकाल-वात्या ने उसे उन्मूलित करके नष्ट कर दिया। उक्त महाशय धर्मेन्द्रजी सच्चे सदाचारी और वीर आर्य थे, उन्होंने हल्दौर में आर्यसमाज की स्थापना के लिए उद्योग में पर्याप्त भाग लिया था। आपने वास-ग्राम बिलाई में भी उन्होंने सुदृढ़ आर्य समाज स्थापित कर दिया था तथा एक कन्या-पाठशाला की भी स्थापना की थी, जो अब डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के अधीन चल रही है, उन्होंने अपने वैयक्तिक सुधार और आत्म-चिन्तन में भी यथेष्ट उन्नति की थी; परमात्मनिष्ठ, समाधि-सिद्ध स्वर्गीय स्वामी सियारामजी के समीप रह कर प्रारंभिक प्राणायाम का भी अभ्यास किया था।

वे ज्वालापुर महा--विद्यालय में रह कर सेवा-कार्य भी करते रहे थे, किन्तु वहाँ की उनके प्रतिकूल परिस्थिति ने उनको वहाँ न रहने दिया। वहाँ से दारुण--रोग--ग्रस्त होकर वे अपने घर आए और शीघ्र ही इस नश्वर शरीर को परित्याग करके चल बसे। उनके पीछे उनके ग्राम का समाज छिन्न भिन्न होगया।
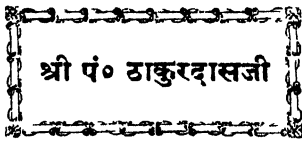
श्री पं० ठाकुरदासजी

मुख्य हल्दौर-ग्राम में, आर्य-समाज-स्थापना से पूर्व आर्य-समाज के सिद्धांतों से सहानुभूति सम्पन्न श्रद्धालु पुरुषों में श्री पं० ठाकुरदास जी का नाम सर्वोपरि उल्लेख्य है। आप का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है कि आपका जन्म २३ फ़रवरी सन् १८७५ ई० का है। बाल्यावस्था से ही आपको विद्या का व्यसन है उस समय की प्रथानुसार प्रथम आपने भी फारसी उर्दू पढ़ने में अपना बाल्यकाल बिताया। नवयौवन में प्रविष्ट होने पर आपको संस्कृत और अंग्रेज़ी पढ़ने की प्रबल रुचि उत्पन्न हुई। आपने फलित ज्योतिष में भी गति प्राप्त की। संस्कृताध्ययन की कथा ऊपर कही जा चुकी है। आप में यह विशेष गुण है कि जब किसी विचार की वास्तविकता, किसी तत्त्व की तथ्यता और किसी सिद्धान्त की सत्यता का आपको विश्वास होजाय, तो आप प्राणपण से उसे कार्य में परिणत करने के लिये सन्नद्ध और बद्ध-परिकर हो जाते है; पुरुषार्थी पुरुष-पुङ्गव और

कर्मण्य, कर्मयोगी कर्मवीर के लक्षण आपमें पूर्णतया प्रकर्ष प्राप्त किए हुए हैं। अपनी विद्यार्थी-अवस्था में विद्या-व्यासङ्ग और गार्हस्थ्य-जीवन में लौकिकाभ्युदय-लाभ में आप इसका पूर्ण परिचय दे चुके हैं। अपने विद्याध्ययन-काल में आपने अँग्रेज़ी भाषा का अध्ययन सितम्बर सन् १८६३ ई० में A. B. C. D. से प्रारम्भ करके पौने तीन वर्ष में मई सन् १८६६ ई० में एन्ट्रेन्स परीक्षा फ़र्स्ट डिवीज़न में पास की थी। उर्दू फ़ारसी में तो आपका पूर्व से ही पूर्ण प्रवेश था, गणित में भी अच्छी गति थी। तत्पश्चात् आपने अपनी पुत्री सौभाग्य-वती कृपादेवी जी को शिक्षा देने के लिए पाणिनीय व्याकरण की भी विज्ञता प्राप्त की, और पाणिनीय अष्टाध्यायी और सिद्धान्तकौमुदी के पारंगामी होगए। सिद्धान्तकौमुदी आपको अनुवृत्ति-क्रम-सहित बहुत अच्छी कण्ठाग्र थी। श्रीमद्भगवद्गीता और उपनिषद् भी आपको भले प्रकार उपस्थित हैं। जब से आपकी श्रद्धा आर्य-सिद्धान्तों पर हुई, तब से आप उनके प्रचार और पालन में पूर्ण-तत्पर हैं।

हल्दौर में उदार विचार और आर्यसमाज के सिद्धान्तों से सहानुभूति रखने वाले तथा उनके प्रचार का सूत्रपात करने वाले सज्जनों में एक नवयुवक म० कामताप्रसाद (आज कल डा० कीर्त्तिदेवजी जल-चिकित्सक) भी स्मरणीय हैं। आप हल्दौर-निवासी पेंशनर सबइन्सपेक्टर दारोग़ा चण्डीप्रसाद के सुपुत्र हैं और बाल्य-काल से ही आपको विद्याभिरुचि और समाज-सुधार की लगन थी।

हल्दौर में सार्वजनिक जीवन का प्रादुर्भाव।

सं० १९६६ वै० (सन् १९०१ ई०) से पूर्व हल्दौर में सार्वजनिक जीवन का प्रादुर्भाव न हुआ था, उससे पूर्व यहाँ किसी नियमित सभा वा समाज का संगठन कभी न हुआ था। पाँच छः साल से अनेक बार आर्योपदेशकों के व्याख्यान तो कराए गए थे। भाद्रपद सुदि तृतीया चतुर्थी सं० १९५९ वै० (६ सितम्बर सन् १९०२ ई०) को श्री ला० ठाकुरदास जो और विनीत लेखक ने अपने निज-व्यय और प्रबन्ध से पं० बसंतलाल जी उपदेशक संयुक्त प्रान्तीय आर्य-प्रतिनिधि सभा, मेरठ-निवासी पं० छुट्टनलाल जी स्वामी आदि आर्य-व्याख्याताओं को हल्दौर बुलाकर भादवी दोयज की गुज़री के मेले के अवसर पर अपनी हवेलियों के चबूतरों पर वैदिक-धर्म का प्रचार भी कराया था, क्योंकि गुज़री के मेले में उसके प्रबन्धक और स्वामी राजा हरबंससिंह जी की, आर्यधर्म प्रचारकों को प्रचार करने की रोक टोक थी। यहाँ के प्रमुख रईस और परम्परागत रूढ़ियों के कट्टर पक्षपाती उक्त राजा हरबंससिंहजी का आर्यसमाज के प्रति विरोध इतना प्रबल था कि यहाँ के साधारण-निवासी, जो किसी न किसी प्रकार उनके आश्रित थे, उनके सामने आर्यसमाज-स्थापना का साहस नहीं कर सकते थे। इसलिए उनके जीवन-काल में दो एक जन आर्य सिद्धान्त के पूर्ण प्रेमी तथा श्रद्धालु होते हुए भी आर्यसमाज-स्थापना के लिए पर्याप्त सदस्यों की

संख्या संग्रह न कर सके थे। ज्येष्ठ बदि द्वितीया सं० १९६६ वै० (७ मई सन् १९०९ ई०) को हल्दौर में कुछ नव युवकों को एकत्र करके प्रथम बार एक सार्वजनिक सभा की स्थापना की गई, उसका उद्देश्य प्रेमपूर्वक एक स्थान पर प्रति सप्ताह एकत्र होकर पुस्तकों और पत्र-पत्रिकाओं के पाठ द्वारा ज्ञान-वृद्धि तथा सामाजिक और नैतिक सुधार करना था और उसका नाम प्रथम प्रेम-सभा रक्खा गया। श्री ठाकुरदासजी और मेरे बालकों के शिक्षक मा० उमरावसिंहजी उसके प्रधान और उक्त पं० कामताप्रसादजी मन्त्री तथा लाला बाबूलालजी (अब आनरेरी मजिस्ट्रेट) उपमंत्री बनाए गए। आषाढ़ सुदि चतुर्थी सं० १९६६ वै० (२१ जून सन् १९०९ ई०) से इस सभा का नाम बदल कर ज्ञानवर्धिनी रक्खा गया, वह फाल्गुन बदि एकादशी सं० १९६६ वै० तक अपने अधिवेशनों द्वारा नियमित रूप से ज्ञानवर्धन का काम करती रही और चै० बदि तृतीया सं० १९६६ वै० (२८ मार्च सन् १९१० ई०) को १ वर्ष से भी कम की आयु में उसकी अन्त्येष्टिक्रिया होगई और इसके पश्चात् कई मासों तक इस उपनगर में किसी सार्वजनिक सभा का अभाव रहा।

हल्दौर आर्यसमाज की प्रथम-स्थापना.

इतने में सं० १९७६ वै० का भादवी दोयज का मेला भी आन पहुंचा और उस वर्ष यहाँ के आर्य-धर्म के अनुरागी और उससे सहानुभूति रखने वाले कुछ

सज्जनों ने मेले में विशेष समारोह से वैदिक-धर्म-प्रचार का प्रबन्ध किया । इस धर्म-प्रचार का हल्दौर-निवासियों विशेषतः विगत ज्ञानवर्धिनी सभा द्वारा सुशिक्षित मनों पर विशेष प्रभाव पड़ा और प्रायः उसी के भूतपूर्व सदस्यों द्वारा प्रचार के अन्तिम दिन मिति भाद्रपद सुदि षष्ठी सं० १९६७ वै० उन्नीस सौ सड़सठ तदनुसार ता० ६ वीं सितम्बर सन् १९१० ई० गुरुवार को सर्व प्रथम श्री ठाकुरदासजी की कोठी में विनीत लेखक भवानीप्रसाद के प्रस्ताव पर बहु सम्मति से हल्दौर आर्यसमाज की स्थापना हुई। श्री ठाकुरदासजी उसके प्रधान ला० लेखराजजी उपप्रधान, भवानीप्रसाद मंत्री, श्री व मूलचंदजी उपमंत्री, ला० डालचंदजी कोषाध्यक्ष और लाला हीरालालजी पुस्तकाध्यक्ष तथा उपर्युक्त सज्जन, मास्टर उमरावसिंहजी, डा० कीर्तिदेव (उपर्युक्त कामताप्रसादजी) तथा ला० प्यारेलालजी दस अन्तरंग सभासद् निर्वाचित हुए। उस प्रथम समाज के २० महाशय सदस्य बने थे। आदि में प्रत्येक चंद्रवार को उसका साप्ताहिक अधिवेशन होता था। इस समाज ने अपने प्रथम सात वर्षोंमें नियम पूर्वक शृंखला बद्ध कार्य किया। सातवें वर्ष तक प्रत्येक वर्ष की वार्षिक विवरणी वर्षान्त पर वार्षिक अधिवेशन में सुनाई जाती रही और उस की क्रमबद्ध सातों प्रतियाँ हल्दौर आर्यसमाज के कार्यालय में सुरक्षित हैं। इन प्रारंभिक सात वर्षों में हल्दौर उपनगर के आबाल-वृद्ध-वनिता, रंक और धनिक जनता में परंपरागत रूढ़ियों, अविद्या, पौराणिक प्रपंच, द्यूत-क्रीड़ा, मद्य-पान

आदि दुर्व्यसनों और कुरीतियों के संहारार्थ, महिला समुदाय के समुन्नयनार्थ और दलित-वर्ग के उद्धारार्थ प्रबल प्रयत्न किए गए। निरक्षरता के निरास और ज्ञानालोक के संचार के लिए पतितोद्धारिणी पाठशाला, देवनागरी-पाठशाला तथा युवक मध्याह्न-पाठशालाओं की स्थापना हुई। पौराणिक-प्रपंच के प्रभाव के परिहारार्थ आस पास के ग्रामों में साप्ताहिक रात्रि-प्रचार और हल्दौर उपनगर में शास्त्रार्थों के आन्दोलन हुए। ज्ञान प्रसार, महिलासुधार और दलितोद्धार आदि का वर्णन यथास्थान आगे होगा।

मध्यकालीन मूर्च्छा।
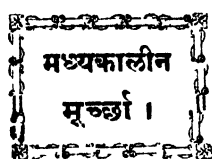
इन सात वर्षों के कठिन परिश्रम से यह समाज मानों इतना श्रान्त होगया था कि उसे, ९ वें और १० वें वर्ष विश्राम लेने की आवश्यकता हुई। इन तीन वर्षों में एक वर्ष दोयज-मेला-प्रचार भी हल्दौर आर्य्य-समाज की ओर से न होकर हल्दौर आर्य्य-कुमार सभा के प्रबन्ध में उसके उत्साही सदस्य म० गोपीनाथजी भिषगक के विशेष सहयोग से किया गया। १० वें वर्ष के मध्य में पौष सं० १९७६ (दिसम्बर सन् १९१९ ई०) की बड़े दिन की छुट्टियों में बिजनौर मण्डलार्य्योपप्रतिनिधि सभा के प्रधान श्री० बाबू जगन्नाथशरणजी B.A.L.L.B. और उक्त सभा के उपदेशक श्री प० विहारीलालजी (अब काव्यतीर्थ) कई अन्य सज्जनों के साथ बिजनौर से ज़िले भर में भ्रमण करते हुए

इन्दौर पधारे और उन्होंने अपनी शुभ प्रेरणा से इन्दौर आर्यसमाज की विशृंखल शक्तियों को एकत्र करके इस समाज के संचालन का पूरा प्रयत्न किया। किन्तु उनके दिए हुए उत्साह-रूप औषध का सेवन करके भी इस समाज को उल्लाघता-लाभ और पुष्टि प्राप्त करने में ५ वर्ष और लगे—अर्थात् ११वें, १२वें, १३वें, १४वें, १५वें, वर्ष में सामाजिक कार्य बड़ी मन्द गति से चलते रहे। सप्तम वर्ष के पश्चात् ८म, ९म, १०म वर्ष की विवरणियाँ वर्षान्त पर प्रस्तुत नहीं की गई, इसलिए समाज के कार्यालय में इन वर्षों की विवरणी-शृंखला त्रुटित है। एकादश और द्वादश वर्ष की एक विवरणी भाद्रपद सुदि पूर्णिमा सं० १९७८ वै० तक की उपस्थित की गई और इसी प्रकार त्रयोदश, चतुर्दश तथा पंचदश वर्षत्रय की एक विवरणी भाद्रपद सुदि पूर्णिमा सं० १९८२ वै० तक लिपिबद्ध की गई था। किन्तु इस निर्बलावस्था में भी श्रीमद्दयानन्द-जन्म-शताब्दी सभा की आज्ञानुसार एक मास का भोर-जगावन कमण्य पं० टीकारामजी भट्ट मंत्री आर्यसमाज के प्रयत्न और उत्साह से ससमारोह किया गया।

रोग के पश्चात् स्वस्थ अवस्था।

आगे चलकर १६वें, १७वें और १८वें वर्षों की विवरणियाँ बतलाती हैं कि इन तीन वर्षों में इस समाज का कार्य अनुकरणीय रहा है। इस अवधि में रचनात्मक कार्य की मात्रा बढ़ी चढ़ी रही है। विशेषतः सत्रहवें

और अठारवें वर्ष सप्ताह-संकीर्तन, दलितोद्धार, सहभोज, शुद्धि, पारिवारिक-सत्संग, ग्राम-प्रचार, कन्योपनयन, महिला-सुधार, हिन्दी-भाषा की उन्नति और कन्याओं की उच्च-शिक्षा का प्रबन्ध इस समाज के गौरव के कार्य हैं। १७वें वर्ष का दयानन्द-सप्ताह-संकीर्तन, जिसमें स्थानीय आर्य-कुमारिका-विद्यालय की विद्यार्थिनियों और अन्य आर्य देवियों की मण्डली सहित, चार मण्डलियाँ प्रति दिन प्रातः उपनगर-भ्रमण करती थीं, विशेषतः उल्लेखनीय है।

दलितोद्धार

यूँ तो इस समाज के स्तंभ दलित-बन्धु श्री ठाकुरदासजी ने आर्य-सामाजिक-क्षेत्र में पाँव रखते ही दलितोद्धारार्थ पतितोद्धारिणी पाठशाला स्थापित करदी थी, जो आगे चलकर चार वर्ष के पश्चात् यहाँ के आर्य महाशयों द्वारा स्थापित और संचालित देवनागरी पाठशाला में मिला दी गई, और उक्त पतितोद्धारिणी पाठशाला के लिए प्रदत्त ५००) वार्षिक आय की भूसम्पत्ति भी उक्त महोदय ने उक्त देवनागरी पाठशाला को दान देकर उसके नाम रजिस्ट्री करादी। अब उक्त देवनागरी पाठशाला में दलित वर्ग के बालक बिना किसी भेदभाव के उच्च ज़ात के बालकों के साथ शिक्षा पाते हैं। इस समाज के १७वों और १८वों वर्ष में उक्त दलितोद्धारक महोदय ने दलितोन्नति के लिए दूसरा पग उठाया। उनकी प्रेरणा और प्रोत्साहन से इन्दौर आर्यसमाज के प्रबन्ध में दाल, भात, रोटी के तीन

सहभोज किए गए जिनमें उच्चम्मन्य आर्यों और आर्य देवियों ने दलितसमुदाय में से आर्यधर्म में प्रविष्ट पुरुषों और उनकी देवियों के साथ बिना पंक्ति-भेद भाव के उनके हाथ से परोसा हुआ भोजन उनके साथ बैठ कर किया। दलितवर्ग के ११६ व्यक्ति इस समाज द्वारा वैदिक धर्म की शरण में आ चुके हैं, जिनको अन्य हिंदुओं के समान ही कुवों पर चढ़कर और अपने अपने घड़े मंड पर रख कर पानी भरने का अधिकार, कुछ अनसमझ हिंदुओं और मुसलमानों के बाधक होते हुए भी, पूर्णतया मिल गया है। इनमें से प्रथम सहभोज में कुम्हारपुरानिवासी, देवनागरी-पाठशाला के मुख्याध्यापक म० शिवराजसिंह जी का सत्साहसपूर्वक सत्याग्रह प्रशंसनीय और अनुकरणीय है, जिन्होंने स्वपिता के उनके सहभोज में सम्मिलित होने के प्रतिरोध के बलात् वशवर्ती होकर हृदयाघात से मूर्छा में निमग्न होने पर ताँगे में डालकर अपने घर से पुनः सहभोज-स्थल में लाए जाकर सहभोजान्न-ग्रहण से सद्यः स्वास्थ्य-लाभ किया था।

महिला-सुधार।

हल्दौर में महिलाओं की महोन्नति, विद्या-व्यासंग और सामाजिक कार्यों में उनका सदुद्योग भी हल्दौर उपनगर की विशेषता है। यहाँ के महिला-वर्ग ने "सरल जीवन और उच्च विचार" (Plain living and high thinking) के भारतीय आदर्श को

और जो पग बढ़ाया है, वह सर्वथा प्रशंसनीय और अनुकरणीय है। यहाँ की पुत्रियों ने देववाणी संस्कृत और मातृभाषा हिन्दी की उच्च शिक्षा प्राप्त करके उनकी सर्वोच्च उपाधियों से विभूषित होकर, अपने रहन सहन तथा वेष भूषा में विदेशी वस्त्र और सोने चांदी आदि धातुओं के गहनों का सर्वथा परित्याग करके, स्वदेशीय खद्दर-धारण, करके मिर्चमसाले खटाई आदि तामस भोजनों को छोड़कर प्राकृतिक सात्विक भोजन के परिग्रहणपूर्वक,और साधारण स्त्रियों में प्रचलित बनाव-चुनाव-बकवास और कलह कथा आदि का वर्जन करके, विद्याभ्यासंग में ही अपने सारे समय के यापन और हल्दौर-समाज के कार्य-संचालन में यथेष्ट भाग लेकर जो उत्तम उदाहरण उपस्थित किया है,उसका दृश्य संयुक्त-प्रान्त के समुन्नत नगरों में भी विरल ही-बहुत कम-देखने को मिलेगा। इस सारी समुन्नति के सर्व प्रथम पथप्रदर्शक हल्दौर आर्यसमाज के स्तम्भ पूर्व-प्रशंसित श्री पं० ठाकुरदास जी ही हैं। आपने अपनी पुत्री सौ० कृपादेवीजी के शिक्षण में जो परिश्रम, प्रचुर धन-व्यय और एक प्रकार से अपने जीवन का बहुमूल्य समय लगाया था, वह पितृ--कर्तव्य-पालन का अनुकरणीय उत्तम दिग्दर्शन है और उसने यहाँ के अन्य निवासियों को भी इस मार्ग का पथिक बनाया। आपकी प्रशंसित पुत्री ने सन् १९१० ई० में १० वर्ष की आयु में हिन्दी-मिडिल-परीक्षा, सन् १९१२ ई० में काशी की संस्कृत प्रथमा परीक्षा, सन् १९१४ ई० में कलकत्ते

की व्याकरण--मध्यमा और काशी की खण्ड--मध्यमा तथा सन् १९१५ ई० में पंजाबविश्वविद्यालय की सर्वोच्च संस्कृतोपाधि--परीक्षा शास्त्री (Honours in Sanskrit) गौतमीय प्राचीन न्यायदर्शन के वैकल्पिक विषय के साथ केवल १५ वर्ष की आयु में पास की थी। इस ज़िले में आप सब से पहिली शास्त्रिणी हैं। इतनी स्वल्प आयु में किसी कन्या के इतनी परीक्षाएँ पास करने का दृष्टान्त दुर्लभ है। आपका विवाह काशी के गौरवधन प्रसिद्ध दार्शनिक श्री० बा० भगवानदास जी M. A. के कनिष्ठ पुत्र श्री बा० चन्द्र-भालजी B. Sc. से सन १९१६ ई० में हुआ था। इसी उत्तम उदाहरण का अनुसरण करके मेरे कनिष्ठ भ्राता ला० हीरालाल जी और यहाँ के आर्यसमाज के आरंभकाल से कोषाध्यक्ष ला० डालचन्द जी ने, अपनी पुत्रियों—श्रीमती कुमारी सरला देवी तथा श्रीमती कुमारी अम्बादेवीजी—को, मातृभाषा हिन्दी की उच्च शिक्षा दिलाई और उक्त दोनों पुत्रियों ने हिन्दी-साहित्य--सम्मेलन की मध्यमा परीक्षा और प्रयाग महिला विद्यापीठ की हिन्दी साहित्य की सर्वोच्च उपाधि परीक्षा साहित्यसरस्वती उत्तीर्ण की थी। उक्त दोनों महाशयों ने अपने परिवार की पुत्रियों के लिये आर्यकुमारिका-विद्यालय की स्थापना की हुई है, जो निज (प्राइवेट) संस्था होते हुए भी अन्य कन्याओं की शिक्षा के लिए भी खुला हुआ है और जिसने कई अन्य कन्याओं को भी हिन्दी--साहित्य--सम्मेलन की

विशारदा तथा उक्त प्रयाग महिला-विद्यापीठ की विदुषी और विद्याविनोदनी बना दिया है। उक्त कुमारिका-विद्यालय उक्त विद्यापीठों के अतिरिक्त आर्य-कुमार-परिषद् की वैदिक-धर्म-विशारद परीक्षा का भी केन्द्र है और अब उसमें अंग्रेज़ी की पढ़ाई का भी प्रबन्ध हो गया है। उक्त कुमारिका-विद्यालय और हल्दौर में कन्याओं की उक्त सारी समुन्नति का श्रेय उक्त विद्यालय के मुख्याध्यापक श्री टीकारामजी भट्ट विशारद को है। आपने अपने स्वाध्याय से अपनी विद्या में विलक्षण वृद्धि की है। आप रेहड़ उपनगर के पूर्वनिवासी हैं। जब आपने हल्दौर पधार कर, श्री ठाकुरदासजी की स्थापित पतितोद्धारिणी पाठशाला के अध्यापक-पद की प्रतिष्ठा बढ़ाई थी और दलित-वर्ग की शिक्षा और उद्धार के लिए प्रबल-विरोध का सामना किया था, तब आपकी शिक्षा अपर प्राइमरी तक थी। किन्तु आर्य-कुमारिका-विद्यालय में आप कन्याओं को उक्त परीक्षाओं के लिए पढ़ाते हुए, स्वयं भी तैयारी करके साहित्य-सम्मेलन की परीक्षाएँ देते रहे और उक्त सम्मेलन की प्रथमा परीक्षा में संयुक्त-प्रान्त में सब से प्रथम रहे तथा उसकी मध्यमा-परीक्षा भी उत्तीर्ण करके विशारद बन गए। आपको समाज-सुधार की भारी लगन है और हल्दौर में जो दलितोद्धार और समाज-सुधार हुआ है तथा महिलामहोन्नति और खद्दर-धारण का जो सुन्दर दृश्य नेत्रों को तृप्त करता है, उसके बहुत कुछ पुण्य-

भागी आप ही हैं। यदि आपने इन्दौर में पदार्पण करके अपने अनवरत प्रयत्न और प्रयास द्वारा आर्यकुमारिका--विद्यालय की कन्याओं की वर्तमान नेत्र--सुख--दायक समुन्नति का सुदर्शन न कराया होता, तो भारत के अन्य अवनत कुलों की कन्याओं के हीन जीवन के समान ही, जो उक्त कन्याओं का भी जीवन अविद्यान्धकार--निमग्न होता, उसकी भावना करके ही हृदय काँप उठता है। इन्दौर आर्यसमाज में महिलाओं का जो समधिक भाग देखने में आता है,उसके साप्ताहिक नैमित्तिक अधिवेशनों में उनकी उपस्थिति अनिवार्यसी होगई है, कभी कभी तो उसकी मात्रा पुरुषों की उपस्थिति से भी बढ़ जाती है और इस समाज की उपमंत्रिणी श्रीमती कु० अम्बादेवीजी दृष्टिगोचर होरही हैं, इस सब के भी प्रेरणात्मक पुण्य के अधिकारी उक्त भट्ट विशारद महाशय ही हैं। यह सारी उन्नति उनके कार्यकाल इस समाज के १७वें वर्ष के प्रारंभ से ही दृष्टिगोचर होरही है।

आर्यसमाज के अन्यतम अंतरंग सदस्य श्री ला० बाबूलाल जी आनरेरी मजिस्ट्रेट की कन्या सौ० श्री गायत्रीदेवीजी ने भी भी उक्त कुमारिका--विद्यालय में शिक्षा प्राप्त करके हिंदी-- साहित्य सम्मेलन की विशारदा तथा प्रयागमहिला विद्या- पीठ की विदुषी उपाधियाँ प्राप्त की थी।

इस लघु लेखक की कन्या आयुष्मती कुमारी सुशीला

देवीजी ने भी घर पर ही अध्ययन करके प्रयाग महिला विद्यापीठ की विदुषी, बिजनौर--मण्डलार्य्य--प्रतिनिधि--सभा की धर्मप्राज्ञा, काशी की समग्र व्याकरण मध्यमा तथा इस वर्ष पंजाब यूनिवर्सिटी की सर्वोच्च संस्कृतोपाधि--परीक्षा शास्त्री (Honours in Sanskrit) सांख्य और योगदर्शन के वैकल्पिक विषय से उत्तीर्ण की है। काशी की उक्त समग्र मध्यमा परीक्षा को गत वर्ष संयुक्तप्रांत में उत्तीर्ण करने वाली केवल यही एक कन्या थी, जिसकी सारी तय्यारी उसने केवल ८ मास में की थी। इस वर्ष पंजाब--युनिवर्सिटी की शास्त्री समुत्तीर्ण केवल दो देवियों में से एक यही है और इस परीक्षा की तैयारी के लिए भी उसे केवल १० मास ही मिले थे। कुमारी सुशीलादेवी ज़िले बिजनौर की द्वितीय शास्त्रिणी हैं। उसकी कनिष्ठा भगिनी कुमारी भद्रशीला ने भी उक्त प्रयाग--महिला–विद्यापीठ की विद्याविनोदिनी परीक्षा उत्तीर्ण की है।

हल्दौर की विद्यानुरागिणी, श्रद्धामयी श्रीमती कृपादेवी रस्तौगी भी स्मरणीय हैं, जो आर्यसामाजिक कार्यों में बड़ी रुचि से भाग लेती हैं और अपने स्व० पति श्री ला० द्वारिकादासजी और अपने स्व० देवरौत (देवृ–पुत्र) श्री जयगोपालजी के स्मारक में अपनी भू--सम्पत्ति के दान से 'जयगोपाल द्वारिकादास कन्यापाठशाला' नामक प्रारंभिक कन्यापाठशाला स्थापित करके चला रही हैं।

प्रथम आर्य सम्मेलन के प्रधान पण्डित ठाकुरदास जी

ज़िला विजनौर की प्रथम शास्त्रिणी श्रीमती रूपा देवी जी।

हल्दौर (जि० बिजनौर) निवासिनी, कुमारी सुशीला देवी (बिजनौर मण्डल की द्वितीय शास्त्रिणी)

आर्य कुमारिका विद्यालय, इन्दौर।

१। श्री पं० टीकाराम जी महाविशारद उपाध्याय।

२। कुमारी अम्बादेवीजी हिन्दी साहित्य सरस्वती, वैदिक-धर्म विशारद।

३। कुमारी सरला देवी जी हि० सा० सरस्वती।

४। कुमारी प्रजादेवी विदुषी विशारद वै० धर्म विशारद।

५। कुमारी सुशीला देवी विदुषी विशारद वै० धर्म विशारद।
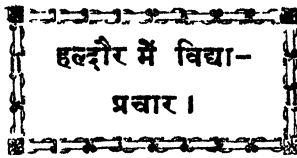
हल्दौर में विद्या-प्रचार।

वैसे तो हल्दौर आर्यसमाज के अधीन कोई संस्था नहीं है, किन्तु इस समाज के सदस्यों द्वारा संस्थापित और संचालित तीन विद्यालय हैं, जिनमें से आर्य-कुमारिका-विद्यालय और जयगोपाल-द्वारिकादास-कन्या-पाठशाला का निर्देश ऊपर होचुका है। दूसरा उल्लेख-नीय विद्यालय देवनागरी पाठशाला है, जो २० वर्ष से चल रही है। चैत्र वदि १ सं० १९६७ वै० बुधवार (१५ मार्च सन् १९१० ई०) को होलिकात्सव से अगले दिन, जब कि मद्योन्मत्त मूर्ख-मण्डली धूल और कीचड़ उछालने में तन्मय थी कुछ आर्यपुरुषों ने मिलकर परिमार्जित और विशुद्ध हिन्दी-साहित्य के प्रचार, गणित, भूगोल और धार्मिक शिक्षा के प्रदान के उद्देश्यसे इस पाठशाला कीस्थापना का निश्चय किया। प्रारंभ में यह पाठशाला चैत्र सुदि द्वितीया सं० १९६८ वै० शनिवार तदनुसार १ एप्रिल सन् १९११ ई० को १० विद्यार्थियों को लेकर ६८) के कोष से आरम्भ की गई थी। प्रथम वह ८॥ वर्ष ७ अक्टोबर सन् १९१९ ई० तक विनीत लेखक भवानीप्रसाद के भवन रामदयाल वाली हवेली में चलती रही। आगे चल कर जब पाठशाला का व्यय बढ़ कर ६०) मासिक तक होगया और २५) मासिक के दान से उसका निर्वाह असम्भव होने लगा, तब श्री ला० ठाकुरदासजी ने अपने द्वारा स्थापित पतितोद्धारिणी पाठशाला को अपनी दान दी हुई ३५) मासिक

आय की ज़मींदारी भी, देवनागरी पाठशाला में दलित-वर्ग के बालकों को निःशुल्क-शिक्षा-प्रदान की शर्त पर, उक्त पाठशाला के नाम करदी। सं० १९७१ वै० में पाठशाला की प्रबन्धकारिणी सभा की राजनियमानुसार रजिस्ट्री कराई गई। सं० १९७३ वै० में १७८१॥=)॥ की लागत से उक्त पाठशाला का निजका भवन बना। ४ वर्ष तक इस पाठशाला में मा० उमरावसिंहजी की अध्यापकता में हिन्दी-मिडिल-परीक्षा भी दिलाई गई। १० विद्यार्थियों ने यह परीक्षा उत्तीर्ण की, सं० १९७७ वै० में हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की परीक्षाएँ दिलाने की आयोजना की गई; किन्तु वह योग्य अध्यापक के अभाव के कारण न चल सकी; क्योंकि मा० उमरावसिंहजी त्यागपत्र देकर मिडिल स्कूल पुरैनी में चले गए और पं० टीकारामजी आर्यकुमारिका-विद्यालय में अध्यापन करने लगे। तब से यह पाठशाला चतुर्थ श्रेणी तक रह गई और तब से उसी श्रेणी तक चल रही है। इस पाठशाला ने हल्दौर में विशुद्ध हिन्दी-प्रचार के अपने उद्देश्य में बहुत कुछ सफलता प्राप्त की है तथा विद्यार्थियों में सदाचार-प्रसार का भी पर्याप्त प्रयत्न किया है। यही इस पाठशाला की विशेषता है। गत वर्ष से हल्दौर में डिस्ट्रिक्ट बोर्ड का मदरसा भी यहाँ की रानी बीबी कुँवरजी की उदारता से उन्नति करके वर्नाकुलर मिडिल स्कूल बन गया है; परंतु देवनागरी पाठशाला के उपर्युक्त उद्देश्य डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के स्कूलों से विभिन्न हैं और

अपने लिए अपनी विशेषता रखते हैं। इसलिए यह अपने ढंग पर अपना कार्य कर रही है। संप्रति इस पाठशाला में ६० विद्यार्थियों को तीन अध्यापक शिक्षा देरहे हैं। यद्यपि इस पाठशाला का शिक्षा-क्रम और प्रबन्ध अपना है, तथापि वह राजकीय शिक्षा-विभाग के इन्स्पेक्टरों के निरीक्षण के लिए खुली हुई है और वे समय समय पर उसका निरीक्षण करते रहते हैं। सन् १९२७ ई० में रुहेलखण्ड डिवीज़न के इन्स्पेक्टर मि० वीयर ने उक्त पाठशाला का निरीक्षण करके लिखा है कि मैंने यह पाठशाला अपने ढंग की एक ही देखी है। यहाँ के विद्यार्थियों का सामान्य ज्ञान बहुत ही प्रशंसनीय है। इस पाठशाला के पुस्तकालय में लगभग ४००) मूल्य की ५०० पुस्तकें हैं। पाठशाला का भवन बड़ा विशाल है। आर्यसमाज हल्दौर के साप्ताहिक और नैमित्तिक अधिवेशन भी उसी में होते हैं।

विशेष विद्या वा कला के ज्ञाता।

इस समाज के यशोवैभव-वर्धक विद्वान् तथा विदुषियों का वर्णन ऊपर आचुका है। कला-कोविदों में कविराज (वैद्य) गोपीनाथजी भिषग्रत्न का नाम उल्लेखनीय है। आप हल्दौर देवनागरी पाठशाला से हिन्दी मिडिल-परीक्षोत्तीर्ण हैं, देहली के आयुर्वेदिक ऐण्ड यूनानी तिबिकालेज से वैद्यक की शिक्षा समाप्त करके सन् १९१७ ई० में रजत-पदक सहित भिषग्रत्न की उपाधि प्राप्त हैं,

अहमदाबाद से प्रकाशित "वैद्यक--कल्प--तरु" के सम्पादक रहे हैं, "मनुष्य का आहार" नामक पुस्तक की रचना पर काशी नागरी-प्रचारिणी सभा से रेडिची पदक पा चुके हैं "यम का दूत, 'दाँत", "भूलोक का अमृत दूध" और "चारु-चिकित्सा" के भी लेखक हैं,"भारत-भैषज्य--रत्नाकर" नामक भागद्वयात्मक ८५० पृष्ठों के ग्रन्थ के संगृहीता हैं और गुजराती से "साधारण नेत्र रोग", "स्वराज्य की कुञ्जी' और "गान्धी वचनावली" के अनुवादक हैं तथा "आरोग्य--दर्पण" के सांप्रतिक संपादक हैं। इन्दौर में आपका "स्वास्थ्य--सदन" औषधालय है। यहाँ आप शिक्षा--प्रचार, दलितोद्धार आदि परोपकार--कार्यों में भाग लेते रहते हैं।

पृष्ठ १२५ से १७६ तक तथा प्रन्बध–प्रवेश और विषय–सूची
बाबू नेमीचन्द जैन ने अपने, 'जैन–प्रेस',
मुरादाबाद में छापे।

बिजनौर-मण्डलार्योपप्रतिनिधि सभा-प्रयत्न-काल।

बिजनौर-मण्डलार्योपप्रतिनिधि-सभा की कल्पना और रचना का आन्दोलन बिजनौर-मंडल (ज़िले) में सं० १९७० वै० के लगभग से होता रहा है। कई बार उद्योग किया गया कि एक भजन-मण्डली और एक उपदेशक स्थायी रूप से रख कर ज़िले में वैदिक-धर्म-प्रचार का कार्य बराबर चलाया जाय। सब से पहिले कानपुर की ओर के एक उपदेशक पं० मनुदत्त जिनके साथ उनका एक विद्यार्थी ब्रह्मचारी आर्यमित्र भी रहता था, नगीना आदि कई आर्यसमाजों की सम्मतिसे इस कार्य पर नियुक्त किए गए थे। पौष सुदि पंचमी सं० १९६६ वै० (१७ जनवरी सन् १९१० ई०) को हल्दौर की ज्ञानवर्धिनी सभा में उन दोनों के व्याख्यान हुए थे। किन्तु वे थोड़े ही दिन कार्य करके चले गए। फिर बहुत से आर्यसमाजों के प्रतिनिधि बुला कर बिजनौर मण्डल की आर्योपप्रतिनिधि के संगठन का प्रयत्न विनीत लेखक के प्रस्ताव पर किया गया और मेरी कल्पना के अनुसार ज़िले भर की समाजों को प्रचारार्थ श्रम-प्रदान के लिए चार कोटियों में बाँटा गया किन्तु उस समय ज़िले की समाजों की उपेक्षावृत्ति के कारण वह संगठन न चलसका। खेद है कि उस समय की सारी कार्यवाही की लेख-बद्ध पत्रावलि (मिसल) जो उस समय उस कार्य के बन्द

होने पर बिजनौर आर्यसमाज के कार्यालय को सौंप दीगई थी; बहुत अन्वेषण करने पर भी वह वहाँ न मिल सकी। यदि वह मिल जाती, तो उस समय के संगठन का विस्तृत विवरण और उसकी तिथियाँ ज्ञात होसकतीं। लहौर आर्यसमाज के आगत पत्रों की संग्रहपुस्तक (File) की देख भाल करने पर उसमें से बिजनौर आर्यसमाज की ओर से भेजी गई ता० २ आक्टोबर सन् १८९७ ई०(आश्विन सुदि पञ्चमी सं० १९५३ वै०) का एक मुद्रित पत्र श्री विश्वम्भर सहाय जी "प्रधान उपसभा" की ओर से समाजों के नाम मिला है, उस में उनको सूचना दीगई थी कि "गत २१, २७ अगस्ट (सन् १८९६ ई०) को बिजनौर आर्यसमाज की ओर से जो कान्फ्रेन्स करने का विज्ञापन जिले की समस्त समाजों की सेवा में भेजा गया था, उस पर बहुत कम समाजों के प्रतिनिधि सम्मिलित हुए! इस लिए बिजनौर समाज के कुछ सभासदों ने समाजों में घूम कर इस विषय में उनकी सम्मति संग्रह की तो यह पता लगा कि वे संयुक्त—प्रान्तीय प्रतिनिधि सभा के नियमानुसार संगठित उपसभा में सम्मिलित होने का समझते हैं। तदनुसार उपसभा का संगठन ठीक करने के लिए नगीना आर्यसमाज मंदिर में एक सभा १५ अक्टोबर (सन् १८९६ ई०) को प्रातः ९ बजे से ११ तक और सायं २ बजे से ५ तक होगी" उसमें सम्मिलित होने के लिए समाजों से अपने प्रतिनिधि भेजने की प्रार्थना की गई थी। ज्ञात नहीं, उक्त १५ अक्टोबर

(सन् १९१६ ई०) को नगीना आर्यसमाज-मन्दिर की सभा में क्या कार्यवाही हुई, क्योंकि उस साल की कोई कार्यवाही पुस्तक भी उपलब्ध नहीं है।

उसके पश्चात् २९, ३०, ३१ मार्च सन् १९१९ ई० को बिजनौर आर्यसमाज के वार्षिकोत्सव पर समाजों की कॉन्फ्रेन्स बुलाने के लिए एक "ज़िला प्रचार के विषय में आवश्यक निवेदन" शीर्षक विज्ञापन श्री बा० जगन्नाथशरणजी वकील B. A, L L. B मन्त्री आर्यसमाज बिजनौर की ओर से समाजों के नाम प्रेषित मिला है, जिसमें अपनी सम्मति और विचार से कोई कार्य प्रणाली निश्चयार्थ, कम से कम दो प्रतिनिधि चुनकर भेजने की प्रार्थना कीगई है। इस अधिवेशनकी भी कार्यवाही उक्त कालकी कार्यवाही-पुस्तककी अनुपलब्धिके कारण अज्ञात ही है। किन्तु ज्ञात होता है कि उसी सभा में बिजनौर मण्डलार्य प्रतिनिधि सभा का जो संगठन हुआ था, वह तब से अविच्छिन्न और दृढ़ चला आरहा है, क्योंकि संयुक्त प्रान्तीय आर्य प्रतिनिधि सभा के वार्षिक-वृत्तान्तों में, जो बिजनौर मण्डलार्य प्रतिनिधि सभाका विवरण दिया गया है, उसमें प्रत्येक में सन् १९१९ ई० उक्त सभा की स्थापना वर्ष लिखा मिलता है किन्तु सन् १९२२ ई० के वार्षिक-वृत्तान्त में, १ जनवरी सन् १९२२ ई० से ३१ दिसम्बर सन् १९२२ ई० तक का जो वृत्तान्त सन्निविष्ट है, उसमें ज़िला-वेद-प्रचार कॉन्फ्रेन्स बिजनौर के रूप में ता० ३ मार्च सन् १९१९ ई० को स्थापित हुई" लिखा

मिलता है, यहाँ ३० मार्च के स्थान में प्रेसकी भूल से ९ मार्च छप गया प्रतीत होता है, क्योंकि आगे लिखा है कि "ता० ३१ मार्च सन् १९१९ ई० को यह भी निश्चय हुआ कि इस वर्ष ज़िला प्रचार का कार्य अन्तरंग-सभा आर्यसमाज बिजनौर के अधीन रहेगा"।

सन् १९१९ ई० से पूर्व जिन महाशयों ने ज़िला—प्रचार आंदोलन के संगठन को पुनर्जीवित करने का प्रयत्न किया था, उनमें मुन्शी रामस्वरूपजी भूतपूर्व नायब महाफ़िज़ दफ्तर बिजनौर का नाम उल्लेखनीय है। उन्होंने इस कार्य के लिए अपनी भरसक सामर्थ्य लगाई थी, किन्तु इस कार्य की सफलता का सेहरा श्री बा० जगन्नाथ शरण जी के ही सिर पर है। सभा ने जो कुछ भी उन्नति की है और वैदिक धर्म-प्रचार का प्रचुर प्रयत्न किया है, वह सब, उक्त महोदय के प्रधानत्व में ही हुआ है। उक्त बाबू जी नवम्बर सन् १९१८ ई० को बिजनौर आर्यसमाज के सदस्य बने थे और ता० १२ एप्रिल सन् १९२० ई० के उक्त सभा के अधिवेशन में जो अधिकारियों का चुनाव हुआ, उसमें उक्त सभा के प्रधान निर्वाचित हुए। तब से आप बराबर उक्त सभा के प्रधान चले आरहे हैं। और उसके उप प्रधान की सेवा पर तब से ही विनीत लेखक अधिष्ठित है। उसी वर्ष संयुक्त प्रान्तीय आर्य-प्रतिनिधि सभा की अन्तरंग सभा (ता० २७ दिसम्बर सन् १९२२ ई०)के निश्चय संख्या २२ के अनुसार यह सभा श्रीमती आर्यप्रतिनिधि सभा

संयुक्त प्रान्त में सम्मिलित हुई।

सभा के उपदेशक पं० विहारीलालजी।

दिसम्बर सन् १९१९ ई० से पूर्व १॥ मास तक पं० देवदत्तजी ने भी सभा के आधीन प्रचार का कार्य किया था २५ दिसम्बर सन् १९१९ ई० से पं० बिहारीलालाजी (अब काव्यतीर्थ) इस सभा के उपदेशक नियत हुए। आपने बड़ी लगनसे सभा का काम किया आप में सच्ची मिशनरी स्पिरिट (धर्म प्रचारक की उत्साहशक्ति) विद्यमान है। आपके भाषण में जो प्रवाह है, वह आपकी स्वभावसिद्ध वाग्मिता का परिचायक है। आप केवल शुष्क उपदेशक ही नहीं हैं, प्रत्युत आपमें साहित्य—रसास्वादन की सहृदयता भी विद्यमान है। आपके विद्या-व्यासंग का प्रेम इसी से प्रमाणित है कि आपने ब्राह्मण की स्वल्प-वृत्ति रखते हुए भी अपने दान से बिजनौर डिस्ट्रिक्टबोर्ड के अधीन एक बिहारी पुस्तकालय(Travelling Library)की स्थापना कराई थी। इस पुस्तकालयकी बिहारी संज्ञा अपने विहरण—शील की अन्वर्थता के साथ साथ अपने संस्थापक पं० बिहारीलालजी का भी जो अपने उपदेशार्थ पर्यटन और विद्या—विहार—शीलता के अन्वर्थ बिहारी हैं, पूरा परिचय देती थी। यह पुस्तकालय अपने संस्थापक की कल्पना के अनुसार काम कर सकता, तो ग्रामीण जनता में ज्ञानालोक—संचार में असीम सहायता देता। पर वह भारत में राष्ट्रीय भावोद्भावना के कुछ विरोधियों को, जोउस समय

डिस्ट्रिक्ट—बोर्ड के कर्ता धर्ता थे, एक आँख न भाया और उन्हों ने उसको चलने न दिया। ज्ञात नहीं अब बिहारी पुस्तकालय की पुस्तकों का बिहारी ट्रंक किस कोठरी के किस कोने में कहाँ पड़ा हुआ है। पं० बिहारीलाल जी उपदेशक ने कई वर्ष सभा की सेवा करके उसकी जड़ जमाई वैदिक धर्म प्रचार के विरोधियों से कई स्थानों में मोरचे लिए। हीमपुर के जन्म जात शेख़ रहीमबख्श को देवदत्त बनाने में अपूर्व वीरता दिखलाई। मनुष्यगणना में ईसाई प्रचारकों के षड्यन्त्र द्वारा बढ़ाई संख्याका भाण्डाफोड़ किया, जिसका कुछ वर्णन चाँदपुर समाज के प्रसंग में आचुका है। इस पर मनुष्य—गणना के सुपरिण्टेण्डेण्ट ने मनुष्यगणना की सन् १९११ ई० की रिपोर्ट में जो टिप्पणी की थी, उसका युक्ति-युक्त और निरुत्तर करने वाला जो उत्तर बा० जगन्नाथशरण जी प्रधान सभाने इलाहाबाद के दैनिक 'लीडर' में प्रकाशित कराया था, उसको यहाँ उद्धृत करने का विचार था, किन्तु खेद है कि लीडर का उक्त अङ्क अन्वेषण करने पर भी न मिल सका।

अन्य उपदेशक

सन् १९१९ ई० से सन् १९२९ ई० तक की १० वर्ष की अवधि में उपर्युक्त दो उपदेशकों के अतिरिक्त निम्नलिखित १३ उपदेशक भी इस उपप्रतिनिधि-सभा के अधीन काम करते रहे। १ म० छज्जूसिंहजी रागी (वैतनिक), २ पं० रामचन्द्रजी आर्यमुसाफिर

(वैतनिक) [ये दोनों महाशय स्थिरवत् से बराबर कार्य कर रहे हैं] ३ मा० गुमानीसिंहजी मन्त्री प्रा० उ० प्र० स० (अवैतनिक), ४ मा० मुन्नसिंहजी (अवैतनिक,) ५ श्री प० ठाकुरदासजी दलितोद्धारक (अवैतनिक), ६ मुन्शी सुरदेव सिंह (वैतनिक, भंगियों में प्रचार किया), ७ म० खूबीरामजी भजनोपदेशक (अवैतनिक), ८ म० नरेन्द्रसिंहजी (अवैतनिक ९ म० जयरामसिंहजी (अवैतनिक), १० स्वा० केवलानन्दजी (अवैतनिक), ११ प० मक्खनदत्तजी शर्मा (अवैतनिक), १२ पं० रघुवीरजी शास्त्री (अवैतनिक), १३ पं० बलजितजी शास्त्री (अवैतनिक) इन सब अवैतनिक महाशयों ने यदा कदा विशेष २ अवसरों पर व्याख्यानादि द्वारा प्रचार कार्य में सहायता दी है ।

सभा के अधिकारी — ऊपर वर्णित श्री प्रधानजी और उप-प्रधान के अतिरिक्त मंत्री-पद का श्री बा० गोविन्दस्वरूपजी B. A. वकील और मा० गुमानीसिंह जी ने, उपमन्त्री—पद को मुन्शी रामस्वरूपजी तथा म० टेकचन्दजी ने, कोषाध्यक्ष—पद को म० नन्दकिशोरजी बा० शम्भूदयालजी प० लक्ष्मीनारायण ने, उपदेशक—विभाग के अधिष्ठाता— पद को पं० जयनारायणजी, ला० बनारसीलाल जी, बा० ललिताप्रसाद जी तथा डा० बलदेव सहाय जी ने तथा आयव्यय—निरीक्षक—पद को श्री ला० ठाकुरदासजी ने समय समय पर विभूषित किया है।

प्रविष्ट समाजें इस सभा में जिले बिजनौर की समस्त समाजें प्रविष्ट हैं, जिनकी संख्या ६० है. इनमें से ४८ समाजों के नाम और वृत्तान्त जो जो मेरी प्रेरणा पर प्राप्त हुए हैं वे वे) अन्यत्र कोष्ठावलि में वर्णित हैं । इन समाजों में से कई ऐसे भी हैं, जो निर्जीव और नाममात्र शेष हैं।

नवस्थापित समाजें सभा की इस दशवर्षीय विवरणी की अवधि में निम्न-लिखित ३६ नवीन समाज स्थापित हुए।

१ लरकड़ा २ सदाफल, ३ गोहावर, ४ बुआपुर, ५ मण्डावर, ६ ढक्का, ७ खालपुरा, ८ रफातपुर, हर्रायवाला, १० आनन्दीपुर, ११ बस्नेड़ा, १२ पजनिया, १३ मघी, १४ हीमपुर १५ ओरना, १६ झालु, १७ गुढगरा, १८ लोफतपुर, १९ भागूवाला २० मूसेपुर २१ सिकरौडा, २२ मोहम्मदपुर (तगा), २३ बाष्टा २४ हारावाली, २५ जमापुर जागीर, २६ सारंगवाला, २७ गजरौला, २८ धाकवाला, २९ शेरपुर कल्याण ३० भगौता, ३१ श्यामपुर, ३२ शिवपुरी, ३३ अटपुरा, ३४ काकूड़ी, ३५ सदरुद्दीननगर (सुजर्दीनगर) ३६ फूना।

शुद्धि—कार्य वर्णित अवधि में ७० व्यक्तियों की शुद्धियाँ हुई, जिनमें कई जन्मजात ईसाई और मुसलमान थे और कई सम्भ्रान्त वंशों के भटके हुए नर नारी थे, जिन्होंने पश्चात्ताप करके पुनः वैदिक धर्म की शरण ग्रहण की। भारतीय शुद्धि—सभा द्वारा मलकानों की शुद्धि आन्दो

लन के समय इस सभा ने "५ लाख नवमुस्लिम राजपूतोंकी हिन्दूकौम से फ़रियाद", शीर्षक विज्ञापन ज़िले में बँटवाया था अपने १२ वालंटियर जिनमें सभा के योग्य उपदेशक पं० बिहारीलाल जी काव्यरत्न तथा चौहान राजपूत—वंश के रत्न, सभा के कर्मण्य मन्त्री, पुरैनी—निवासी मा० गुमानीसिंह जी का नाम विशेषत: उल्लेखनीय है, आगरा शुद्धि—सभा का हाथ बँटाने को भेजे थे और कुछ धन भी उक्त सभा को भेजा गया था। इसी अवसर पर मलकानों की शुद्धि से भड़क कर कुछ मुसलमान नेताओंने बकरीद पर अधिकाधिक गोवध करनेके लिए जो मुसलमानों को उकसाया था और जिससे गोभक्त हिन्दूमात्र के उत्तेजित होकर रक्त—पातादि उप-द्रवाग्नि के प्रज्वलित होने की पूर्ण संभावना थी, उसके शम-नार्थ इस सभा ने 'दुश्मनी की आग को मोहब्बत से बुझा दो' शीर्षक विज्ञापन सहस्रों की संख्या में ज़िले के बाहर भी दूर दूर तक बँटवाया था। हीमपुर ग्राम में शेख़ रहीमबख्श की शुद्धि से चिढ़कर मुसलमानों ने उस गाँव के आदमियों पर जो कई अभियोग चलाये थे तथा पं० बिहारीलालजी उपदेशक को भी एक अभियोग में फँसाया था, उनमें उनके आरोप मिथ्या प्रमाणित होकर अभियुक्त सम्मान—पूर्वक छूट गए थे। इन अभियोगों की पैरवी में सभाके प्रधान बा० जगन्नाथशरण जी वकील ने किसी पारिश्रमिक (मेहनताने) के बिना पूरी पैरवी की जिसमें उनका बहुतसा अमूल्य समय लगा।

प्रचार कार्य — उपदेशकों द्वारा जिले भर के ग्रामों और कस्बों में मौखिक-प्रचार के अतिरिक्त यह सभा जिले के मुख्य मुख्य मेलों पर भी प्रचार कार्य में स्थानिक समाजों को अपने उपदेशक भेज कर सहायता देती रही है। जिनमें से कार्तिकी गंगा-स्नान गंज दारानगर भाद्रवी दोयज हल्दौर, भाद्रवी नवमी फूला, जाहरदीवान की छड़ियों का मेला गंज दारानगर मुख्य हैं। सभा के उपदेशक झालू आदि कई स्थानों में जाकर शास्त्रार्थ भी करते रहे हैं। लेख द्वारा प्रचार में सभा ने कई सहस्र ट्रैक्ट छपवा कर बेचे और बाँटे थे महर्षि दयानन्द की जय के हिन्दी उर्दू पर्चे वितीर्ण किए तथा कोकनाडा कांग्रेस में ४००० अंग्रेजी नोटिस "वर्तमान जागृति का पिता दयानन्द" शीर्षक बँटवाए।

पीड़ित जन-सहायता — सभा ने मोपला-उपद्रव के समय मालाबार-पीड़ितों की सहायतार्थ मुद्रित अपीलें बाँटकर, लगभग एक सहस्र रुपया अपने उद्योग से महात्मा हंसराज जी के पास भिजवाया था। सन् १९२४ ई० मेवाड़-पीड़ित-ग्रामों में अन्न वस्त्र और औषधि बँटवाई थी।

धार्मिक परीक्षाएं — सभा ने मेरी प्रेरणा से मेरे प्रबन्ध में 'धर्मप्राज्ञ', 'धर्म-विशारद', और 'धर्म-विचक्षण', नामक तीन धर्म-परीक्षाएँ प्रचलित

की थीं, जो सन् १९२२ और २३ ई० में २ वर्ष तक चलती रहीं और उनमें बिजनौर ज़िले तथा ज़िले से बाहर सुदूरवर्ती इटावा तक के परीक्षार्थी सम्मिलित होकर पास हुए किन्तु पीछे से ये परीक्षाएँ विस्तार—प्राप्ति की अधिक उपयोगिता की आशा से संयुक्त—प्रान्तीय सभा के अधीन कर दी गईं और वहाँ जाकर उनका लोप होगया।

दलितोद्धार यूँ तो दलित—समुदाय में बीसियों जातें सम्मिलित हैं, किन्तु रुहेलखंड (बरेली) कमिश्नरी के अन्य सब ज़िलों की अपेक्षा बिजनौर ज़िले में चमार कहलाने वाले दलित वर्ग की संख्या सर्वोपरि है। इस ज़िले में सन् १९२१ ई० की मनुष्यगणना के अनुसार उनकी कुल संख्या १ लाख ३६ हज़ार ५ सौ ४३ थी जो ज़िले की कुल संख्या का १७ प्रतिशत और हिन्दुओं की जनसंख्या का २३.४ प्रतिशत था और यह ज़िले की सब जातों के सर्वातिशाय (सब से बढ़कर) संख्या है। इतने बड़े समुदाय को हिन्दुओं ने अछूत बनाया हुआ है, जो सलूक कुत्ते बिल्ली आदि निकृष्ट जन्तुओं से भी नहीं किया जाता वह इन मनुष्यों से किया जाता है, वैदिक धर्म और वेद की वाणी में सब मनुष्य समान और अमृत—"पुत्र,, हैं। इसलिए वैदिक धर्म के उद्धारक और प्रचारक आर्यसमाज का उनको छूत बनाकर उनको वैदिक धर्म में प्रविष्ट करना परम कर्तव्य है। अब तक आर्यसमाज ने सिद्धान्त रूपेण इस परम कर्तव्य का अनुभव करते हुए भी

कार्यतः इस ओर अति उपेक्षा का असह्य अपराध किया था। आर्यसमाज के उपदेशक आर्यसमाज की वेदी से मनुष्य मात्र की अस्पृश्यता और वैदिकधर्म—प्रवेश के समानाधिकार का उच्च—घोष करते हुए भी भोजनादिस्पर्श-व्यवहार में अपने खिचड़ी अलग ही पकाते थे और पौराणिक चौके चूल्हे की पृथक क्यारी में आबद्ध रहते थे जिले बिजनौर के आर्यों, उन की प्रतिनिधि इस उपसभा और उसके अन्यतम उत्कृष्ट अंश दीनबन्धु, दलितोद्धारक हलदौर वास्तव्य श्री पं० ठाकुरदासजी को यह गौरव प्राप्त है कि उन्होंने संयुक्त—प्रान्त में सब से पूर्व इस कार्य—क्षेत्र में अपना पग बढ़ाया है। उनके इस दलितोद्धार में प्रवृत्त होनेसे पूर्व—आर्य—जनता की मनोवृत्ति भी पौराणिक हिन्दुओं से भिन्न न थी, वे भी चमारों से छुए हुए आहार और पेय पदार्थों में वही छुआ छूत मानते थे, जो उनके पौराणिक पूर्व पुरुषों में प्रचलित थी और वर्तमान सनातनी हिन्दुओं को अब भी व्याप रही है। इस मनो-वृत्ति के सुधारके लिए उक्त दलितोद्धारक महाशय को अपने घर बार को तिलांजलि देकर अहर्निश ग्राम ग्राममें भ्रमण करकेआन्दोलन करना पड़ा, तब कहीं जाकर आर्य—जनता का ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ और उसकी प्रतिनिधि सभा ने उक्त पण्डित जी के नेतृत्व में इस कार्य को अपने ऊपर उठाया सब से पूर्व नजीबाबाद आर्यसमाज के उत्सव पर चमारप्रमुख दलितों को कूओं पर चढ़ाया गया था और उनके साथ सह भोज किया

गया था, इसका विस्तृत वर्णन उक्त आर्यसमाज के विषय में आ चुका है। तत्पश्चात् बिजनौर आर्यसमाज के उत्सव पर उक्त समुदाय को बिजनौर के कुओं पर पानी भरवाया गया। इस सभा ने देहली दलितोद्धारिणी सभा के प्रचारक म० नानकचन्दजी को अपने व्यय से बुलवा कर ता० ६ नवम्बर सन् १९२२ ई० से १९ नवम्बर सन् १९२२ ई० तक इस ज़िले के दलितों में प्रचार कराया और उनको मनुष्यता के भागी होने का ज्ञान प्रदान किया। सन् १९२३ ई०में ईसाई धर्म में भ्रष्ट हुए कुछ दलितों और उनके एक साधु को शुद्ध करके वैदिक-धर्म में प्रविष्ट किया। सन् १९२५ ई० में बिजनौर और हल्दौर में अछूतोद्धार विषय पर दो कान्फ्रेन्सें की गईं, जिनमें मथुरा की श्रीमद्दयानन्द जन्मशताब्दी के अवसर पर संगठित विद्वत्परिषद् के मन्तव्यानुसार आर्यसमाज में प्रविष्ट दलितों के यज्ञोपवीत आदि संस्कार तथा उनके साथ और हाथ के भोजन का अधिकार अङ्गीकार किया गया। इसी वर्ष जसपुर निवासी लाला जमनादासजी की सहायता से म० हरदेवसिंह प्रचारक को रखकर भंगियों में प्रचार कराया गया. हल्दौर में वसन्तपंचमी के अवसर पर प्रथम सहभोज ६ ठीं फ़रवरी सन् १९२७ ई० को किया गया, जिसमें बाहर की समाजों के लगभग ५० भाई सम्मिलित हुए।

६ ठीं मार्च सन् १९२७ ई० को सेवहारे के समपवर्ती गोविन्दपुर ग्राम में १०० दलितों का वैदिक—धर्म—प्रवेश

किया गया। चौथी अप्रैल सन् १९२७ ई० को बिजनौर के पार्षिकोत्सव पर निमिरपुर वाले ५ दलितों का प्रवेश हुआ। १ अप्रैल सन् १९२७ ई० को धामपुर के निकटवर्ती पूरनपुर और बिरामपुर ग्रामों में १०० के लगभग दलितों का प्रवेश हुआ। ३ री जून सन् १९२७ ई० को बुआपुर ग्राम के ३०० दलित वैदिक-धर्म में प्रविष्ट हुए। इस अवसर पर बरेली से पं० बिहारीलाल काव्यतीर्थ तथा मेरठ से पं० शिवदयालुजी अधिष्ठाता उपदेशक—विभाग आर्यप्रतिनिधि सभा संयुक्त प्रान्त भी पधारे थे। ता० २६ जून सन् १९२७ ई० को नजीबाबाद आर्यसमाज के उत्सव पर २५० आर्यों का सहभोज हुआ ता० ७ सितम्बर सन् १९२७ ई० को फूगा में भादवी नवमी के मेले के अवसर पर सहभोज हुआ। सभा के दशम वर्ष (१ ऑक्टूबर सन् १९२७ से ३० सितम्बर सन् १९२८ ई० तक) निम्नलिखित वैदिक—धर्म—प्रवेश हुए—

(१) भाजपुर खेड़ी तहसील नजीबाबाद में २३ ऑक्टूबर सन् १९२७ ई० को १५० व्यक्ति।

(२) बांगू में २६ फरवरी सन् १९२८ ई० को १०४ व्यक्ति।

(३) धनौरा जि० मुरादाबाद में ३ री जून सन् १९२८ ई० को ८ व्यक्ति।

(४) दहला वाला ग्राम में ६।१० जून सन् १९२८ ई० को २५० स्त्री पुरुषों के ५० परिवार।

(५) इन्दौर में २७ सितम्बर सन् १९२८ ई० को दोयज मेले पर १५० स्त्री पुरुषों के १८ परिवार।

(६) पूना में भाद्रपदी नौमी पर २५ सितम्बर सन् १६२८ ई० को सहभोज हुआ।

(७) बिजनौर में ३० सितम्बर सन् १६२८ ई० को ५० व्यक्तियों के १६ परिवार।

प्रवेश-विधि संक्षेपतः यह है कि प्रथम प्रवेश से कई दिन पूर्व दलितों के रहन सहन-स्थान तथा वस्त्रादि-की स्वच्छता कराई जाती है, भोजन के मिट्टी के पात्र दूर कराकर धातु के पात्र बदलवाए जाते हैं, चौका लगाकर और धोती पहनकर भोजन बनाने की विधि बताई जाती है। तत्पश्चात् प्रवेश के दिन शुद्ध हवन कराकर वैदिक धर्म की दीक्षा दी जाती है और उसी समय उनसे मांस मदिरा आदि अभक्ष्य पदार्थ सेवन तथा अवैदिक कार्यों के न करने की प्रतिज्ञाएँ कराई जाती हैं, इसके पीछे उनसे भोजन बनवाकर समागत आर्य पुरुषों को परसवाया जाता है और नव प्रविष्ट भाई सब आर्यों के साथ एक पंक्ति में बैठकर भोजन करते हैं। सभा को दलितोद्धार-आन्दोलन में दलितों को कुओं पर अपने घड़े रखकर पानी भरने का अधिकार दिलाने के लिए न्यायालय (अदालतों) में जा संघर्ष करना पड़ा और वहाँसे सभा के पक्ष के अनुकूल जो निर्णय हुए हैं उन सबका सविस्तर वर्णन सभा की ओर से प्रकाशित "ज़िला बिजनौर में दलितोद्धार का काम" नामक पुस्तिका (ट्रैक्ट) में हो चुका है, उसका मूल्य)॥ है और वह सभा के कार्यालय से मिल सकती है।

सभा का आय व्यय इस सभा का व्यय अपने से संबद्ध समाजों पर लगाए हुए ६००) वार्षिक कोटि-धनसे तथा आकस्मिक दानसे चलता है। सभा का आय व्यय प्रतिवर्ष १ सहस्र के लगभग रहता है। सभा के पास १२ बीघे १२ बिसे एक भूसंपत्ति भी भोगपुरी ग्राम परगने मण्डावर में श्रीमती रामप्यारी जी की दान दी हुई है।

यदि आर्य जनता और आर्यसमाजें जन और धनसे अपनी इस उप-प्रतिनिधि सभा को पुष्ट बनाती रहें, तो यह ज़िला बिजनौर में वैदिक-धर्म प्रचार में पूरी सफलता प्राप्तकर सकती है और आर्य्य पुरुषों को नियमित संगठन शक्ति का उत्तम उदाहरण और आदर्श उपस्थित कर सकती है।

बिजनौर माण्डलार्योपप्रतिनिधि सभाके सदस्य।

बिजनौर आर्य उपदेशक मण्डल ।
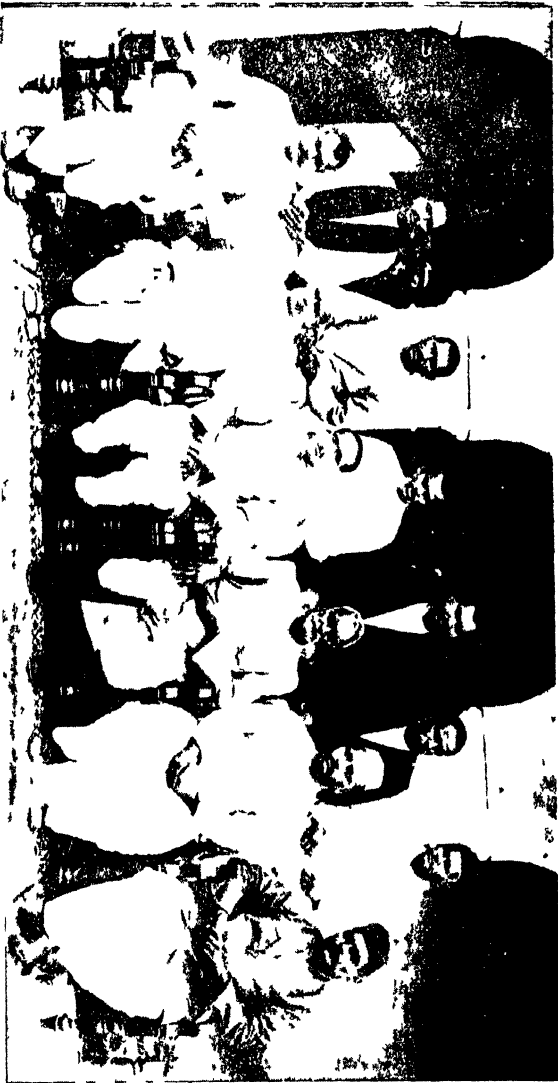
पैजनिया आर्य समाज के प्रधान चौ० शिवचरण जी

विद्या प्रचार ।

बिजनौर मण्डल में आर्यसमाज के कर्म कलाप के एक विभाग धर्म प्रचार का वर्णन काल-क्रम से तीन प्रधान कालों में ऊपर होचुका है। अब इसके दूसरे विभाग विद्या-प्रचार का कुछ संक्षिप्त वर्णन किया जाता है। आर्यसमाज अपने अष्टम नियम अविद्या का नाश और विद्याकी वृद्धि पर सदा आरूढ़ रहा है। उसके विद्याप्रचार का ही यह फल है कि उसने भारतीय विशेषतः हिन्दू जनता की मनोवृत्ति में महा परिवर्तन उत्पन्न कर दिया है। जो मिथ्या विश्वास और परम्परागत रूढ़ियाँ साधारण जनता की घुटी में पड़ी हुई थीं उनकी जड़ अब हिलचुकी है और अब आर्य समाज के प्रचारित स्त्री शिक्षा, गुणानुगत विवाह और दलितोद्धार आदि को शिक्षित जनताने अधिकांश अंगीकार कर लिया है। विद्या प्रचार के सर्वोपरि साधन साक्षरता और शिक्षाप्रचार में आर्यसमाज ने जो कार्य किया है, उसका उसको समुचित स्वाभिमान होसकता है।

आर्य्य-समाज के प्रादुर्भाव से पूर्व स्त्रियों में कोई विरली ही साक्षरा होती थी किन्तु अब आर्यों की पुत्रियाँ और वधुएँ कोई निरक्षरा मिलनी कठिन हैं। अब सनातनियों को भी यह चिन्ता घेरे रहती है कि यदि उनकी पुत्री निरक्षर रही तो उसको वर मिलना दुर्लभ होगा। पुत्रीको शिक्षा और विशेषतः हिन्दी और संस्कृत के प्रचार में भी आर्यसमाज ने विलक्षण कार्य किया है, जो संस्कृत और हिन्दी पहले पाधा और पुरोहितों की बपौती समझी जाती थी, वह अब जन साधारण की वस्तु बनगई है। जिन कुलों में देव नागरी का काला अक्षर भैंस बराबर था और जिनके युवाओं की विद्यार्थी अवस्था महामहिम मौलवियों की शुश्रूषा और फारसी उर्दू

की आराधनामें दीजाती थी, उनमें अब देववाणी की सर्व्वोच्च परीक्षोत्तीर्ण उपाधि-प्राप्त देवियाँ और देव "विद्वांसो हि देवाः" विद्यमान हैं। जिले बिजनौर को भी आर्य विदुषी और विद्वानों की बहु संख्या उत्पन्न करने का अग्रगण्य गौरव प्राप्त है।

कांगड़ी गुरुकुल विश्वविद्यालय

आर्यसमाज का सब से बड़ा विश्वविद्यालय कांगड़ी गुरुकुल, जिसने शिक्षा क्षेत्र में राष्ट्रीय शिक्षा का उत्तम उदाहरण उपस्थित किया है, जिला बिजनौर की भव्यभूमि पर भागीरथी माता के वक्षःस्थल और पिता हिमाचल के चरणों में स्थापित है। इस गुरुकुल को यहां स्थापित कराने का पुण्य संचय भी बिजनौर वासी एक दानवीर स्वर्गीय मुं० अमनसिंह जी ने ही किया था।

कांगड़ी गुरुकुल के लिये भूमि के दानी मुन्शी अमनसिंह जी

श्री मुन्शी अमनसिंह जी का जन्म ई० सन् १८६३ में बिजनौर नगर के एक प्रतिष्ठित, समृद्ध वैश्य परिवार में श्रीमान् ला० शिवलाल जी रईस के घर में हुआ था। उन दिनों आज कल की तरह अंगरेजी शिक्षा प्राप्त करने का सुयोग सर्वत्र न था इसलिए आप साधारण गणित भूगोल आदि की शिक्षा के साथ साथ केवल उर्दू तथा फ़ारसी का ही अध्ययन करसके।

उन दिनों प्रायः सारे ही देश में बाल विवाह का एकछत्र राज्य था। इसलिए आपका विवाह भी कुछ छोटी अवस्था में ही जलालाबाद के एक प्रसिद्ध तथा प्रतिष्ठित रईस श्रीलाला सूरजभानजी की भगिनी श्रीमती ईश्वरीदेवीजी के साथ बड़े

समारोह से होगया। आजकल जलालाबाद, जो किसी समय परगने का मुख्य स्थान था, प्रायः ऊजड़ सा पड़ा है क्योंकि प्रायः सभी बड़े बड़े लोग वहाँ से उठकर नजीबाबाद, चले आये हैं किन्तु उन दिनों वहाँ बड़ी रौनक थी।

आपका शरीर यों तो स्वभाव से ही कृश था, उस पर लगभग बाईस तेईस वर्ष की आयु में दुर्भाग्य से आपको श्वासरोग (दमा) होगया जो आपको जीवन भर अति कष्ट देता रहा। औषध सेवन से इस दारुण रोग को कुछ लाभ न होता था प्रत्युत कांगड़ी गुरुकुल के विशाल क्षेत्र और स्वच्छ वायुमण्डल में निवास से दमा दबा रहता था।

साधारण शिक्षित होने पर भी आप अन्धविश्वासों के बड़े विरोधी थे। दिशाशूल, भूतप्रेत और अनावश्यक चौका चूल्हा आदि को आप न मानते थे। अन्धविश्वासों के विरोधी होते हुए भी आप बड़ी धार्मिक प्रवृत्तियों के पुरुष थे। धनी होने पर भी आप में कोई व्यसन न था। बड़ी आयु में भी आपने पान तम्बाकू एक दम छोड़ दिया था। इसी का यह फल था कि ६३ वष की आयु में भी आपका कोई दांत हिला तक न था।

धार्मिक साधु सन्तों की संगति और सेवा में आपको बड़ा आनन्द आता था। कांगड़ी ग्राम के आपके बगीचे के बङ्गले में कोई न कोई साधु अतिथि ठहरा ही रहता था।

कांगड़ी ग्रामवासी ग्रामीणजन आप पर बड़ा विश्वास रखते थे और अपने आपस के झगड़े आप से ही तै कराया करते थे।

आपके कोई सन्तति न थी और आप श्वास के सतत रोगी थे। दमे का दौरा पड़ने पर किसी भी क्षण प्राण परि-

त्याग की आशंका बनी रहती थी इसलिये आपने यह निश्चय किया कि स्वभूसम्पत्ति को अपने जीतेजी ही दान करजॉय जिससे उनके देहान्त पर कोई झगड़ा न उठे। अतएव अपने सुपरिचित नजीबाबाद आर्यसमाज के प्रधान पं० बालमुकुन्द जी आदि की सम्मति से आपने महात्मा मुन्शीरामजी को, जो उन दिनों गङ्गातीर पर गुरुकुलस्थापना के लिये भूमि की गवेषणा में आनव्यग्र थे, अपना सत्रह सौ १७०० बीघे कब्जेका समग्र कांगड़ी ग्राम दान देने की इच्छा विषयक पत्र लिखा। महात्मा मुन्शी रामजी को इस पत्रकी बात का विश्वास न आया। उन्होंने उसको किसी विरोधी का उपहास समझा और पत्र का उत्तर तक न दिया। मुन्शी जी का दूसरा पत्र आने पर उन्होंने अपने मित्र कनखल निवासी ला० कृष्णचन्द्रजी रईस को अन्वेषणके लिये नजीबाबाद भेजा और उनके इस समाचार को सत्य पाने और महात्मा मुन्शी रामजीको इसकी सूचना देने पर श्रीमुन्शी अमनसिंहजीने सन् १९०० ई० के लगभग अपने काङ्गड़ी ग्रामका दानपत्र गुरुकुल स्थापनार्थ श्रीमती आर्यप्रतिनिधि सभा पञ्जाब के नाम लिख कर रजिस्ट्री करा दिया।

आपका स्वभाव बड़ा ही सौम्य और सरल था। रोगी रहने पर भी उनमें चिड़चिड़ापन नाम को न था। रहनसहन भी आपका बहुत ही सादा था। एक टाईगजी धोती, बिना कालर का खुली आस्तीन का कुरता और सादा स्वदेशी जूता बस यही आपका परिच्छद था।

आपकी धर्मपत्नी श्रीमती ईश्वरदेवीजी बड़ी पतिपरायण थीं और पतिव्रता आर्यरमणी के पूर्ण आदर्श को आपने अपने जीवन में घटा कर दिखलाया था। उन्हीं के कारण श्री मुन्शी जी का पारिवारिक जीवन, कोई सन्तान जीवित न रहने

पर भी बहुत सुखमय था। श्रीमती ईश्वरदेवीजीका बहुत बड़ा भाग अपने सदा के रोगी पतिदेव की अनन्य सेवा में ही व्यतीत हुआ है। बचपनसे ही कितनी ही रातें आपने अस्वस्थ पति के चरणों में बैठकर जागते २ व्यतीत की हैं। आपको आयुके ५० वर्ष काढ़े पकाते, छानते तथा दवाएं घोटते हो व्यतीत हुए हैं। धनी परिवार की पुत्री होने पर भी आपने सदा अपने ही हाथों पथ्य तथा अमृतमय भोजन बना कर अपने पतिको इतने दिन जीवित रक्खा। आपसी देवी इस युग में दुर्लभ है।

मुन्शी अमनसिंहजी ने कोई निज औरस सन्तान न रखते हुए भी अपने कई सम्बन्धियों के पुत्र पुत्रियों को पालन पोषण करके और सुशिक्षा दिलाकर संसार यात्रा को सफलता पूर्वक चलानेके योग्य बनादिया। अपने भागिनेय प०नन्दकिशोर जी विद्यालंकार और अपने पालित पुत्र साहित्याचार्य प०भमीश्वर विद्यालंकारको गुरुकुल कांगड़ीमें प्रविष्ट कराकर आपने इनके स्नातक बनने में सहायता प्रदान की तथा अपनी दौहित्री (भगिनी सुताकी पुत्रियों) सौभाग्यवती गोमती और सोमलता को जालंधर के कन्या महाविद्यालय में सुशिक्षिता बनाकर व्याह दिया। सौ० गोमती का विवाह हरदोई के पं० मदनमोहनलालजी विद्यालंकार से करदिया और सौ० सोमलताका पाणिग्रहण कानपुर के कविराज राधेलाल वैद्य को कराया गया।

श्री मुन्शी अमनसिंहजी अपनी आयु के ६३ वें वर्ष अर्थात् सन् १९२५ ई० की ग्रीष्म ऋतु में विशेष अस्वस्थ होगये। निर्बलता बहुत बढ़नेलगी। धीरे २ शरीर पर शोथ आगया। जनवरी सन् १९२६ ई० में आप कानपुर में अपने एक सम्बन्धी वैद्य पास चिकित्साके लिये चले गये। वहाँ कुछलाभ न हुआ। हुआ वही जो होना था, २८ जनवरी सन् १९२६ ई० को रात्रि

के दश बजे बड़ी शान्तिके साथ आप सदाके लिए नींदमें सोगये अगले दिन प्रातः श्रीमती ईश्वरदेवीजी ने उक्त वैद्यजी की सहायता से आपका अन्त्येष्टि संस्कार वैदिक रीति से करा दिया। इस प्रकार आपके पाञ्चभौतिक विनश्वर शरीर का तो अन्त होगया परन्तु आपका यश आपको इस लोकमें सदा जीवित रक्खेगा।

कांगड़ी गुरुकुल के संस्थापक महात्मा मुन्शीरामजी (पश्चात् स्वामी श्रद्धानन्द जी) का तपोभूमि गंगातीर का प्रकृष्ट प्रेम भी इस ज़िले में गुरुकुल की स्थापना का मुख्य हेतु था। खेद है कि गतसन् १९२४ई०के जलप्लावनसे कांगड़ी गुरुकुलके भवनों को अति हानि पहुंचने के कारण उक्त गुरुकुल अब इस जिले से गंगा के दूसरी पार सहारनपुर के ज़िले में गंगा की नहर के किनारे स्थानान्तरित किया जारहा है किन्तु ज़िले बिजनौर के आर्यसमाज के इतिहास में सर्व प्रथम इसी ज़िले में उसकी स्थापना की पुण्यस्मृति सदा बनी रहेगी।

ज़िले बिजनौर में विद्या प्रचार के प्रयत्नों में बिजनौर मंडल आर्योपप्रतिनिधि सभाकी धार्मिक परीक्षाओं का वर्णन उक्त सभाके विवरणमें पूर्व आचुका है। इस ज़िलेमें और भी जो अनेक पाठशालायें विद्याप्रचारार्थ चल रही हैं उनका वर्णन भी यथा स्थान होचुका है। बिजनौर ज़िले के गौरववर्धक जिन २ सरस्वतीके उपासकों और आर्यसमाज के सेवकोंका यहाँ प्रादुर्भाव हुआ है, उनकी एक सूची संक्षिप्त परिचयसहित नीचे दीजाती है।

(क) कांगड़ी-गुरुकुल विद्यालय में बिजनौर-मण्डल वास्तव्य स्नातक आर्य विद्वान्।

१—नजीबाबाद निवासी पं० प्रियव्रतजी विद्यालंकार—आप इन्द्रप्रस्थ गुरुकुल में कई वर्ष तक मुख्याध्यापक का कार्य कर

श्री महात्मा मुंशीरामजी संस्थापक तथा प्रथम
मुख्याधिष्ठाता कांगड़ी गुरुकुल विश्वविद्यालय

चुके हैं और सम्प्रति सूपा (गुजरात) गुरुकुल के आचार्य हैं।

२—नजीबाबाद निवासी पं० जगन्नाथजी विद्यालंकार आप बंदजोई आदि कई ग्लास वर्क्स में काम कर चुके हैं सम्प्रति आप कांगड़ी गुरुकुल में Demonstrator हैं।

३—नजीबाबाद पूर्ववासी पं० वागीश्वरजी विद्यालंकार साहित्याचार्य—आपने गुरुकुलसे स्नातक होनेकेपश्चात् काशीमें कई वर्ष रहकर संस्कृत साहित्य का विशेषतः अध्ययन किया है और काशी की सर्वोच्च साहित्याचार्योपाधिपरीक्षा उत्तीर्ण की है, सम्प्रति आप कांगड़ी गुरुकुल मे साहित्य के महोपाध्याय हैं। आपकी कविता सरस होती है।

४—हल्दौर निवासी पं० मदन गोपालजी विद्यालंकार। आप ज्योतिषशास्त्र में लब्ध-प्रवेश हैं। अब आप अपने घरकी जमीन्दारी का प्रबन्ध करते हैं।

५—हल्दौर निवासी पं० रामगोपालजी विद्यालङ्कार। आप नागपुर के प्रणवीर आदि के सम्पादक रह चुके हैं और सम्प्रति देहली के दैनिक अर्जुन के सम्पादक हैं।

६—हल्दौर निवासी पं० रामचन्द्रजी विद्यालंकार—आप देहली में अपना जुर्राबों का बड़ा कारखाना चला रहे हैं।

७—कूगडाग्राम निवासी पं० शान्तिस्वरूप जी वेदालंकार—बिजनौर जिले के स्नातकों में वेदालंकार की उपाधि केवल आपने ही प्राप्त की है, आप कुरुक्षेत्र गुरुकुल में कई वर्ष तक अध्यापक रहचुके हैं, सम्प्रति अपने घर पर कृषि आदि करते हैं।

८—बिजनौर निवासी डा० पं० ओमप्रकाशजी विद्यालंकार। आपने स्नातक होने पर डाक्टरी परीक्षा उत्तीर्ण की है और सम्प्रति बिजनौर में अपना विशाल औषधालय स्थापित करके चिकित्सा कार्य कर रहे हैं।

६-मण्डावर पूर्ववासी नन्दकिशोर जी विद्यालंकार। आप कांगड़ी गुरुकुलके स्थान कांगड़ी ग्रामके दानीमुं० अमनसिंहजी के भागिनेय हैं और गुजरात विद्यापीठ आदिमें प्रोफैसर रहचुके हैं। सम्प्रति कलकत्ते में वाणिज्य व्यवसाय करते हैं।

(ख) ज्वालापुर महाविद्यालय से शिक्षा तथा उपाधिप्राप्त बिजनौर मण्डलके वासी आर्य विद्वान्।

१—रतनगढ़ निवासी पं० रामावतारजी शास्त्री, न्याय वेदान्ततीर्थ। आप विद्याकी इतनी उपाधियाँ रखते हुए भी अति सौम्य और सरलस्वभाव हैं। आपका रहन सहन भी बहुत सादा है। सम्प्रति आप घर ही रहते हुए आत्म-तत्त्वचिन्तन और ग्रन्थ प्रणयन में समय यापन करते हैं।

२—अफ़ज़लगढ़ निवासी विद्याभास्कर प० हरिशंकरजी शास्त्री न्यायतीर्थ—आप सम्प्रति ज्वालापुर महाविद्यालय के उपदेशक हैं।

३—नायकनंगला निवासी विद्याभूषण पं० काशीनाथजी काव्यतीर्थ। आप इस ज़िले के सुप्रसिद्ध साहित्यमर्मज्ञ प० पद्मसिंहजी के सुपुत्र हैं और सम्प्रति अलौड़ा (ज़िले मेरठ) की संस्कृत पाठशाला में अध्यापक हैं।

४—ऊमरी निवासी सरस्वती भूषण प० नरदेवजी शास्त्री आप महाविद्यालय ज्वालापुर में अध्यापक हैं।

५-असगरीपुर निवासी विद्यारत्न प० बलजित्जी शास्त्री। आप प्रसिद्ध भजनोपदेशक म० ऋषिरामजी के सुपुत्र हैं और सम्प्रति अंगरेजी की बी० ए० परीक्षा की तैयारी कर रहे हैं।

६-पुरैनी निवासी विद्यारत्न, कविराज प० रणवीरजी शास्त्री। आप प्रसिद्ध भजनोपदेशक म० छज्जुसिंहजी गागी के सुपुत्र हैं और सम्प्रति दयानन्द ऐंग्लो वैदिक कालीजियेट मिडिल स्कूल में संस्कृताध्यापक हैं।

७-थाई ग्राम निवासी विद्यारत्न पं० रघुवीरजी शास्त्री। आप कुरुक्षेत्र गुरुकुल में अध्यापक हैं।

८-जैनरा ग्राम निवासी विद्यारत्न प० भूपालजी शास्त्री

९-नगीना निवासी पं० ऋषिदेवजी शास्त्री।

(ग) पञ्जाब-विश्वविद्यालय से उपाधिप्राप्त बिजनौर निवासी आर्य्य विद्वान्।

१—श्रीमती सौभाग्यवती कृपादेवीजी—आप हल्दौर के श्री प० ठाकुरदासजी की सुपुत्री हैं, जिले बिजनौर की महिलाओं में प्रथम शास्त्रिणी देवी आप ही हैं।

२-श्रीमती कुमारी सुशीलादेवी जी--आप हल्दौर के श्री प०भवानीप्रसादजी की सुपुत्री हैं, जिले बिजनौरकी महिलाओंमें द्वितीय शास्त्रिणीदेवी हैं।

३-भैंसा ग्राम वासी प० हरदयालुजी शास्त्री।

४-रतनगढ़ वासी पं० कृष्णानन्दजी शास्त्री।

५-अफ़ज़लगढ निवासी प० प्रियदत्तजी शास्त्री।

६-चाँदपुर निवासी पं०रामेश्वरजी शास्त्री।

७-भैंसा ग्राम वासी पं० जयदेवजी हिन्दीभूषण।

८-पुरैनी ग्रामवासी पं० रणवीरजी शास्त्री।

९-मलगरीपुर ग्रामवासी प० बलजित् जी शास्त्री।

१०-रतनगढ़ निवासी पं० रामावतारजी शास्त्री।

११-अफ़ज़लगढ़ निवासी पं० हरिशंकरजी शास्त्री।

१२-ऊमरी ग्राम निवासी पं० सत्यव्रतजी शास्त्री।

१३-थाई ग्राम निवासी पं० रघुवीरजी शास्त्री।

१४-जैनरा ग्राम वासी पं० भूपालजी शास्त्री।

१५-नगीना निवासी पं० ऋषिदेव जी शास्त्री।

(घ) काशी, कलकत्ता, बिहार के उपाधि परीक्षोत्तीर्ण बिजनौरमण्डलाधिवासी आर्य्य विद्वान् ।

१-हल्दौर निवासी पं० सिद्धगोपालजी काव्यतीर्थ (बिहार)
२-चाँदपुर निवासी प० रामेश्वरजी काव्यतीर्थ (कलकत्ता)
३-नजीबाबाद निवासी पं० वागीश्वरजी साहित्याचार्य (काशी)
४-रतनगढ़ निवासी प० रामावतारजी न्याय वेदान्ततीर्थ (कलकत्ता)
५-अफ़ज़लगढ निवासी प० हरिशंकरजी न्यायतीर्थ (कलकत्ता)
६-नायक नगला निवासी प० काशीनाथजी काव्यतीर्थ (कलकत्ता)

(ङ) बिजनौर ज़िले के अन्य आर्य्य विद्वान् ।

१—नायक नंगला निवासी साहित्यमर्मज्ञ सुलेखक प० पद्मसिंह जी शर्मा ।

प० पद्मसिंह जी को उत्पन्न करके ज़िले बिजनौर की वसुन्धरा वस्तुतः सपूती होने का अभिमान रखती है । चांदपुर नगर से ईशाण कोण में नायक नंगला ग्राम बसा है । वहाँ सद्गुणावली गुम्फित सौम्य मूर्ति चौ० उमरावसिंहजी निवास करते थे, आस पास के ग्रामों में विशेषतः अपनी तगा (दानत्यागी ब्राह्मण) बिरादरीमें आपका प्रबल प्रभाव था । इस ज़िले में आर्यसमाज का सन्देश पहुँचने पर आपने आर्य सिद्धान्तों को ग्रहण करके उनको अपने और आस पास के ग्रामों में फलाने का पर्याप्त प्रयत्न किया था । प० पद्मसिंहजी उन्हीं चौ० उमरावसिंह जी के पुत्ररत्न हैं । आप बाल्यावस्था में उस समय की प्रथाके अनुसार घर पर ही उर्दू फ़ारसी पढ़ते रहे । कुछ युवा होने पर आप जालन्धर को वैदिक पाठशाला में संस्कृत पढ़नेके लिये चलेगये और वहाँ आपनश्रीप०गङ्गादत्तजी अब ज्वालापुर महाविद्यालयके आचार्य श्रीस्वामी शुद्धबोधतीर्थ

जी) से संस्कृत व्याकरणका अध्ययन किया। जालन्धरमें अध्ययन समाप्त करके आप व्याख्यानों द्वारा वैदिकधर्म का प्रचार करते रहे और संस्कृत साहित्य के स्वाध्याय में अपना समय बिताने लगे आपकी स्वाध्याय-शीलता ने आपको संस्कृत साहित्य में निष्णात बना दिया। संस्कृत का शायद ही कोई काव्य आपके अवलोकन से बचा हो, आपकी स्वाध्याय-शीलता व्यसन की सीमा को पहुँची हुई है। पुस्तक-पाठ में आप दिन रात एक किये रहते हैं। बीसियों रातें आपने पढ़ते पढ़ते ही बिता दी हैं और आपको यह भान ही न हुआ कि रात किधर चली गयी, कि भोर हो गया। स्वाध्याय के इस व्यसन ने आपको साहित्यमर्मज्ञ तो बना दिया किन्तु आप अपने स्वास्थ्य से हाथ धो बैठे हैं और पिछले दारुण रोग में परमपिता ने मृत्यु मुख से आपकी रक्षा की है, आपके हाथों हिन्दी साहित्य के अमूल्य रत्न **बिहारी की सतसई** का उद्धार होना था और सचमुच आपके संजीवन भाष्यने हिन्दी के इस कमनीय काव्य को संजीविनी बूटी पिलाकर अमर बना दिया है। आपको परमात्मा की देन जो सहज प्रतिभा प्राप्त है, उसका उपयोग आप प्रथम से ही लेख लिखने में करते रहे हैं, समय समय पर पत्र, पत्रिकाओंमें तो लेख देते ही रहे हैं। अजमेर से प्रकाशित परोपकारिणी सभा के पत्र **परोपकारी** और **ज्वालापुर महाविद्यालय के भारतोदय** के आप सम्पादक भी रहे हैं। आपकी सम्पादकता में इन दोनों पत्रों ने जो शोभा लाभ की थी, उसके साक्षी उनके उन दिनों के फ़ाइल अब भी हैं। निबन्धलेखन और पत्र सम्पादन के साथ साथ आप अध्यापन भी करते रहे हैं। प्रथम आप अहार (ज़िला बुलन्दशहर) की पाठशाला में अध्यापक थे, फिर आप काङ्गड़ी गुरुकुलकी आदिम अवस्थामें

वहाँ संस्कृत साहित्याध्यापन का कार्य करते रहे, तत्पश्चात् ज्वालापुर महाविद्यालयमें काव्य और साहित्य पाठनमें तत्पर रहे, गत वर्ष आप कांगड़ी गुरुकुल विश्वविद्यालय के हिन्दी साहित्य के प्रोफ़ैसर पद की शोभा बढ़ा रहे थे।

आपकी सरस्वती सेवा के पुरस्कार स्वरूप आपको प्रथम संयुक्तप्रान्तीय हिन्दी साहित्य सम्मेलनके सभापतिके आसन पर प्रतिष्ठित किया गया, इसके पश्चात् आपको वह सर्वोच्च प्रतिष्ठा प्राप्त हुई जो हिन्दी साहित्यसेवी जनता किसी पुरुष को दे सकता है, अर्थात् आप मुज़फ्फ़रपुर में अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के सभापति बनाये गये, और आपके बिहारी सतसई के संजीवन भाष्य पर आपको उक्त सम्मेलन की ओरसे श्री मङ्गलाप्रसाद पारितोषिक प्रदान किया गया।

बिजनौर ज़िले को यह गौरव प्राप्त है कि उसके निवासी एक साहित्यसेवीको हिन्दी संसारका सर्वोच्च समादर मिला था।

सम्प्रति प० पद्मसिंहजी स्वप्रणीत निबन्धों के प्रकाशनकार्य में संलग्न हैं। अपने लेखों के संग्रह सचित्र पद्मपराग का प्रथम भाग आपने अभी कलकत्ते से प्रकाशित किया है जिसका सौरभ साहित्यसेवी संसार को सुगन्धित और तृप्त कर रहा है। जहाँ उसकी सुगन्ध अभी नहीं पहुँची है, आशा है वहाँ भी प्रेमी पाठक उसको मंगाकर उसके रसा-स्वादन का आनन्द लगे। पं० पद्मसिंहजी आज कल कलकत्ते से, संस्कृत के सब से प्रथम पत्र विद्योदय के सुललित लेखों का भी, एक संग्रह प्रकाशित कर रहे हैं, यह संग्रह संस्कृत की साहित्यसुषमा का एक सुन्दर आदर्श सुरवाणी सेवियों के सामने रक्खेगा।

२—रतनगढ़ निवासी श्री प० धर्मवीर जी त्यागी M. A.

M. L. C. । आप दृढ़ आर्य्य-समाजी और ब्रह्मचारी पुरुष हैं। काशी विद्यापीठ में बहुत दिनों तक प्रोफ़ेसर रह चुके हैं। आप में देश-भक्ति कूट कूट कर भरी है, और आप इण्डियन नेशनल कांग्रेस के सरगर्म मेम्बर और कार्य कर्त्ता हैं। संयुक्त-प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभा (यू० पी० लेजिस्लेटिव कौंसिल) के आप मेम्बर भी हैं। सम्प्रति आप मेरठ बालशेविक षड्यन्त्र के महाभियोग में ग्रस्त और विचाराधीन हैं।

३—रतनगढ़ निवासी श्री० प० महावीर जी त्यागी। आर्य्य समाज के सिद्धान्तों में आस्था रखते हुए भी भारत के लिये स्वराज्य-प्राप्ति आपका ध्येय है। आप अंगरेज़ी सेना में एक अच्छे पद पर प्रतिष्ठित थे और फ़ारस आदि विदेशोंमें आपने सैनिक सेवा का सम्मान प्राप्त किया था, परन्तु सन् १९२१ ई० के भारतराष्ट्रीय स्वराज्य युद्धमें आपने सैनिक सेवा से असहयोग करके उसे छोड़ दिया, और आप ज़िला बिजनौर में कांग्रेस का कार्य बड़े उत्साह और परिश्रम से करते रहे। ज़िला बिजनौर की किसान सभा के प्रधान और 'ग़रीब पत्र' के सम्पादक थे। आप सुवक्ता भी हैं।

४—मण्डावर समीपस्थ शहज़ादपुर ग्रामवासी श्री मास्टर रामलाल जी B. A. हेडमास्टर आर्य्य हाईस्कूल लुधियाना। आपने पञ्जाब में रहकर शिक्षा प्रचार का भारी कार्य किया है, और लुधियाना के बड़े आर्य स्कूल को आप जिस सफलता से चला रहे हैं उससे आपका यश सारे पञ्जाबमें फैला हुआहै। प्राकृत भाषा के उच्चकोटि के विद्वान् होते हुए और एक हाई स्कूल के सर्वोच्च हेडमास्टर के पद पर प्रतिष्ठित होते हुए भी आप में अभिमान और अभिनिवेश का लेश भी नहीं है। विनय शिष्टता और सरलता की आप साक्षात् मूर्ति हैं। इस ज़िलेको

यह गौरव प्राप्त है कि इसने पञ्जाब को एक ऐसा उत्तम कार्य-कर्त्ता पुरुष दिया है।

५—सिवहारा निवासी श्री प० शङ्करदेव जी पाठक—आप श्रीमद्दयानन्द जन्म शताब्दीसभा की ओर से प्रकाशित संस्कृत सत्यार्थ प्रकाश के अनुवादक हैं, गुरुकुल वृन्दावन के मुख्याध्यापक हैं तथा सुदृढ आर्य हैं। आपने अपना विवाह जाति बन्धन तोड़कर किया है।

(च) बिजनौर ज़िला निवासी आर्य्य-धर्म-प्रचारक।

१—डा० प्रवीण सिंह जी—आप आर्य्य समाज के संगीत विद्याविशारद प्रसिद्ध प्रचारक हैं। स्वदेश और सुदूर विदेश अफ्रीका आदि में आपने वैदिकधर्म का प्रचार करके अच्छी कीर्ति कमाई है।

२—नगीना समीपस्थ किरतपुर ग्रामवासी प० एम० जे० शर्मा मदुरा (मदरास)।

उक्त महाशय का कुछ परिचय शेरकोट आर्य्य-समाज के वर्णन में दिया जा चुका है। आप हाथ की सफ़ाई के जादू के खेल दिखलानेका व्यवसाय करते हुए सुदूर वर्ती मदरासप्रान्त में जा पहुँचे। वहाँ अस्पृश्य दलित जातियों की दुरवस्था देख कर आपके हृदय को आघात पहुँचा और आपने उनके उद्धार का अन्य कोई उपाय न पाकर आर्य्य समाजके सिद्धान्तों द्वारा ही इस कार्य में सफलता की आशा देखी। आपने आर्य समाज के सिद्धान्तोंके परिचय के लिये सत्यार्थ प्रकाशका पाठ प्रारम्भ किया। उसको पढ़कर आपको वैदिक धर्म में अटल श्रद्धा हो गई। मदरास में रहकर उसके प्रचार का आपने दृढ निश्चय कर लिया और मदुरा की एक मदरासी देवी का पाणिग्रहण करके उसके सहवास से तामिल भाषा सीखी और वहाँ की

जनता में उसी भाषा में मौखिक और पुस्तिकावितरण द्वारा लिखित प्रचार प्रायः २० वर्ष से कर रहे हैं।

३—असगरीपुर निवासी प० केदारनाथजी दीक्षित अध्यापक D. A. V. हाई स्कूल होशियारपुर।

४—पुरैनी निवासी मा० हुलास वर्मा--आप आर्य धर्म का प्रचार कार्य करते रहे हैं और अब देहरादून में प्रेस का व्यवसाय करते हैं।

५—मुस्तफ़ाबाद ग्राम निवासी प० रामचन्द्र आर्य्य मुसाफ़िर सिद्धान्त विशारद—आप आगरेके "आर्यमुसाफिरविद्यालय"से शिक्षा प्राप्त आर्य्य समाजके परमोत्साही और परिश्रमी प्रचारक हैं। स्वाध्यायशीलता आपका विशेष गुण है, आप बिजनौर मण्डलार्योपप्रतिनिधिसभा के आधीन ६ वर्ष से बड़ी लगन से वैदिकधर्म प्रचार का कार्य कर रहे हैं।

६—पुरैनी ग्राम निवासी म० छज्जूसिंह रागी—आप आर्य समाज के भजनोपदेशक हैं। सदाचार और सरलता आप के विशेष गुण हैं और बिजनौर मण्डलार्योपप्रतिनिधिसभा के अधीन १० वर्ष से बड़ी लगन से वैदिकधर्मप्रचार का कार्य करते रहे हैं। दलितोद्धारकार्य में आपने विशेष योग दिया।

७-असगरीपुर ग्राम निवासी म० ऋषिराज जी—आप आर्य समाज के पुराने भजनोपदेशक हैं, कई भजनपुस्तकाओं के प्रणेता हैं। आपकी प्रचारशैली प्रभावोत्पादक है।

८—ऊमरी ग्राम निवासी म०नरेन्द्रसिंहजी भजनोपदेशक।

९—ऊमरी ग्राम निवासीम०कान्तिचन्द्रजी भजनोपदेशक।

१०—फूना ग्राम निवासीम०रघुवीरसिंहजी भजनोपदेशक।

११—मनकुआ ग्राम निवासीम०नत्थुसिंहजी भजनोपदेशक।

१२—रतनगढ़ ग्राम निवासीम०शम्भुदत्तजी भजनोपदेशक।

१३—उमरपुर ग्राम निवासी म० मुकुन्दरामजी भजनोपदेशक।

१४—मलगरीपुर ग्राम निवासी म० जयरामसिंहजी भजनोपदेशक।

१५—नगीना निवासी म० सन्तरामजी भजनोपदेशक।

१६—अलाउद्दीनपुर ग्राम निवासी म० मोहनसिंहजी भजनोपदेशक।

१७—रतनगढ़ग्राम निवासी पं० विश्वम्भरदत्तजी उपदेशक।

१८—रतनगढ़ग्राम निवासी प० गंगासहायज भजनोपदेशक।

१९—भैंसाग्राम निवासी प० शंकरदत्तजी उपदेशक।

आप आर्यसमाजके पुराने उपदेशक हैं। काव्यों और दर्शनों के स्वाध्याय में आपकी विशेष रुचि है, दलितोद्धारकार्य में आप सदा भाग लेते रहे हैं।

२०—साहनपुर निवासी प० गंगादत्तजी शर्मा।

२१—ठेरी ग्राम निवासी म० इन्द्रजी भजनोपदेशक।

२२—अलाउद्दीन ग्राम निवासी प० द्वारकादत्तजी पाठक उपदेशक आ० प्र० स० यू० पी०।

२३—हल्दौर निवासी पं० मनुदत्तजी भारद्वाज उपदेशक।

२४—हल्दौर निवासी प० ज्ञानस्वरूपजी उपदेशक।

२५—कुम्हारपुरा ग्राम निवासी म० शिवराजसिंहजी सिद्धान्त विशारद।

२६—हल्दौर निवासी म० गणेशसिंहजी सिद्धान्त विशारद।

२७—महमूदपुर ग्राम निवासी प० भद्रदत्तजी शर्मा उपदेशक गुरुकुल वृन्दावन।

२८—झालुनिवासी पं० आत्मानन्दजी शर्मा उपदेशक।

S. M. P. Press Moradabad.

	समाज नाम	स्थापना का संक्षिप्त इतिहास	वर्तमान अधिकारी प्रधान	वर्तमान अधिकारी मन्त्री	सभासद संख्या	[illegible]	मासिक चन्दा	कोई संस्था हो तो उस का संक्षिप्त वृत्तान्त	आर्यसमाज मन्दिर का मूल्यसहित विवरण	पुस्तकालय विवरण	संस्कार विवरण	मुसलमान आदि परमतावलम्बी शुद्धिविवरण	दलितोद्धार विवरण	अन्तर जातीय विवाह	विधवा विवाह विवरण	किसी कला व विद्या के विशेषज्ञों का विवरण
३७	रेहड़ (डाक घर है)	सन् १९०१ ई० सहारनपुर निवासी मा० पृथ्वीसिंह इंगलिश अध्यापक के प्रयत्न से समाज स्थापन हुई प्रथम प्रधान ला० काशीनाथजी मन्त्री मा० पृथ्वीसिंहजी बनाए गए परन्तु कुछ दिन चलकर समाज टूट गई। सन् १९२८ ई० में पुन स्थापित हुई।	म० [illegible] लाल जी	ठा० [illegible] सिंह जी	२८			—					सन् १९२८ ई० में [illegible] रहने वाले ग्रामों [illegible] चमारों का प्रवेश हुआ			
३८	मगौना (पोष्ट आफिस शहजादपुर)	७ जनवरी सन् १९२९ ई० का यहाँ आर्य समाज स्थापित हुआ	ला० रामस्वरूप जी	म० कुन्दन लाल जी	२०			एक हिन्दी की पाठशाला है		१४ पुस्तकें मू० ७)॥	यज्ञोपवीत कई नामक०	१	खिजरपुरग्राम में ५७ दलितों के आर्यधर्मप्रवेश में सहायता दी	१ जाति पातिका बन्धन तोड		
३९	मारगवाला (पोष्ट आफिस नगीना)	१९ अप्रैल सन् १९२५ ई० को मा० गुमानी सिंहजी के उद्योग से समाज स्थापित हुआ।	म० शेर सिंहजी	म० साधु सिंह जी	१२											
४०	जटपुरा (पोष्ट आफिस अफजलगढ)	९ अगस्त सन् १९२९ ई० का स्वामी ब्रह्मानन्द जी के सदुपदेश से आर्य समज स्थापित हुई।	चौ० गुमानी सिंह जी	चौ० भगत सिंह जी	३०											
४१	अफजलगढ़ (पोष्टआफिस है)	इस समाज का कोई विवरण नहीं मिला।							मन्दिर है							
४२	बुडवारा (डाकघर [illegible] पुर है)	२९ जनवरी सन् १९२८ ई का मा० गुमानी सिंहजी के उद्योग से स्थापना [illegible]	ठा० हरदेव सिंहजी	मा० चन्दन सिंह जी	१०		१॥)			४० पुस्तकें मू० ३०)	२१ नाम० २० यज्ञो० ४ चूडा० १० वि०					
४३	सोफतपुर (डाकघर [illegible] है)	२२ मार्च सन् १९२९ ई० को मा० गुमानीसिंह जी के उद्योग से स्थापना हुई।	मा० छाजे लाल जी	चौ० हरजस सिंह जी	२४		३			॥) के लगभग मू० का ५ पुस्तकें है	६ यज्ञोप०		मा० तुकमान सिंहजी दलितोद्धार में प्रचार करते हैं			
४४	बरमपुर (डाकघर है)	यह समाज १३ जून सन् १९१५ ई० का स्थापित हुआ।	म० [illegible] जी	म० [illegible] सिंह जी	२८		२)	इस समाज के अधीन एक कन्या पाठशाला भाज पुर में है तथा एक पुत्र पाठशाला पुरैनी कलां में है इन दोनों पाठशालाओं को डि० बोर्ड से सहायता मिलती है।	लागत (१५०) मूल्य का मन्दिर है जिसकी रजिस्ट्री भी सन् १९२३ ई० को हुई है।	१०१ पुस्तकें मू० ८८।-)	२८ नामकरण १५ यज्ञोपवीत १७ विवाह ५ अन्त्येष्टि	४ मुसलमानों की	१५३ दलितों का वैदिकधर्म प्रवेश हुआ।			बरकातपुर निवासी म० दलपतिसिंह जी मल्ल विद्या में प्रवीण है

S M P Press, Moradabad.